मानसिक शांति ग्रन्थमाला—संख्या १८

वैराग्य के पथपर

लेखक

श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती
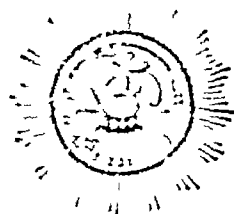
प्रकाशक

जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड.

प्रधान कार्यालय—
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।

शाखा —
प्रिण्टिंग हाउस, हौज कटरा,
बनारस।

प्रथम बार] १९४३ [मूल्य १)

ॐ

वैराग्यकी प्रतिमूर्ति, अनन्त सुख, अमरत्व, कैवल्य
और जीवनका परम लक्ष्य प्राप्त करनेके लिये
धन सम्पत्ति एवं राज्यका परित्याग करने
वाले भगवान बुद्ध, राजा भर्तृहरि
एवं राजा गोपीचन्दकी
पवित्र, पुनीत
स्मृतिमें।

ॐ

भोगे रोगभय, कुले च्युतिभय, वित्ते नृपालाद्भय ।
माने दैन्यभय, बले रिपुभय रूपे जराया भयम् ॥
शास्त्रे वादिभय, गुणे खलभयं, काये कृतान्ताद्भय ।
सर्ववस्तुभयान्विते भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥

भोग विलासमें लिप्त रहनेपर रोगोंका भय रहता है, सामाजिक उत्थानमें पतनका भय रहता है, धनकी वृद्धि होनेपर राजासे छिन जानेका भय रहता है, अत्यधिक आदर सम्मानके बाद अनादरका डर रहता है, शक्ति बढ़नेपर शत्रुओंका डर होता है, सौन्दर्यमें जराका डर होता है शास्त्रोंमें पाण्डित्य प्राप्त होनेपर शास्त्रार्थमें पराजयका भय होता है, गुण वृद्धि होनेपर कलङ्कका भय होता है तथा शरीरको मृत्युका डर होता है। विश्वकी सारी वस्तुए जिनसे मनुष्य-का सम्बन्ध होता है भयसे भरी रहती हैं। वैराग्यसे ही निर्भयता प्राप्त होती है।

—भर्तृहरि ।

ब्रह्मादिस्थावरान्तेषु वैराग्य विषयेष्वनु ।
यथैव काक विष्ठाया वैराग्यतद्धि निर्मलम् ॥

ईश्वरसे लेकर स्थावर, जङ्गम, चराचर सबके प्रति किसी प्रकारकी भी कामना न रखनेको ही पूर्ण वैराग्य कहते हैं।

—शंकराचार्य ।

वैराग्य

काम क्रोधश्च लोभश्च देहे तिष्ठन्ति तस्कराः ।

ज्ञानरत्नोपहाराय तस्माज्जाग्रत जाग्रत ॥

इस शरीर रूपी गढ़में काम क्रोध और लोभ रूपी तीन तस्कर छिपे हुए हैं जो ज्ञान रूपी रत्नको चुराना चाहते हैं । ऐ मानव ! तू जाग ! सावधान हो !

जन्मदु ख जरादु ख जायादु ख पुन पुन ।

ससारसागर दु खं तस्माज्जाग्रत जाग्रत ॥

ससारमें जन्म लेना दु खोंका कारण है, बुढापेमें दु ख ही दु ख हैं तथा नारी सब दु खोंकी प्रधान कारण है । यह ससार सागर ही दु खोंसे भरा हुआ है । अब भी तो मूढ़ मानव जाग !

माता नास्ति पिता नास्ति नास्ति वन्धु सहोदर ।

अर्थं नास्ति गृह-नास्ति तस्माज्जाग्रत जाग्रत ॥

न कोई किसीकी माता है न कोई किसीका पिता । भाई, वन्धु कहीं किसीका कोई नहीं । धन दो दिनकी वस्तु है, ससार मिथ्या है । नर ! अब तो आँखें खोल ।

अस्य बाधते लोके कर्मण्यां वहु चिन्तया ।

आयु क्षणि न जानाति तस्मा ज्जाग्रत जाग्रत ॥

अनेकानेक वासनाओं, चिन्ताओं और कर्मोंके द्वारा जीवन इस ससार रूपी सुदृढ़ शृङ्खलामें बधा है । अत मूर्ख मनुष्य तुझको पता नहीं चलता कि प्रति क्षण इसका ह्रास हो रहा है । अरे अब भी तो जाग !

ॐ

दिन नीके बीते जाते हैं।

याद हक करना कराना है फकत साधुका काम।
खलकको रस्ता दिखाना है फकत साधुका काम॥

—दिन नीके बीते जाते हैं।

सुमिरन कर मन राम नाम।
तज विषय भोग और सर्व काम॥
तेरे संग चले नहीं एक दाम।
जो देते हैं सो पाते हैं॥१॥

—दिन नीके बीते जाते हैं।

भाई बन्धु और कुटुम्ब परिवारा।
सब जीते जी के नाते हैं॥
किसके हो तुम कौन तुम्हारा।
किसके बल हरि नाम बिसारा॥२॥

—दिन नीके बीते जाते हैं।

लख चौरासी भरमके आये।
बड़े भाग मानुष तन पाये॥
तिसपर भी नहीं करी कमाई।
फिर पीछे पछताते हैं॥३॥

—दिन नीके बीते जाते हैं।

जो तू लागे विषय विलासा।
मूरख फसे मृत्यु की पासा॥
क्या देखें श्वासाकी आसा।
गये फेर नहीं आते हैं॥४॥

—दिन नीके बीते जाते हैं।

ज्ञान वैराग्य

—:o:—

(क) राम राम राम राम राम,

राम राम राम राम राम ।

बाह्य जगतके पदार्थोंमें सुखकी खोज मृगतृष्णा है, भ्रम है। उस अनन्त आनन्द स्रोतकी खोज क्यों नहीं करते जहा पहुचने पर फिर तुम तृप्त हो जाओगे। उठो, जागो, मानव जीवनके परमोच्च लक्ष्यकी ओर बढ़ो। विषय वासनाके भयानक गर्तमे कबतक पड़े रहना चाहते हो। अरे! अब भी तो चेतो वैराग्याभ्यास द्वारा अब भी तो अन्तरात्माको पहचानो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा। मन! क्या अब भी तू नश्वर विषय पदार्थोंसे नहीं ऊबता। अरे! मनन और निदिध्यासन द्वारा अब भी तो आत्मानन्द प्राप्त कर।

(ख) राम, राम, राम, राम, राम।

सुना जा सुना जा सुना जा कृष्ण।
तू गीता वाला ज्ञान सुना जा कृष्ण॥

मनमे पहले विषय विकार उठते हैं फिर वासनाका जोर बढता है। किन्तु श्रवण और सत्सङ्गसे भगवद् प्रेमकी अनुभूति होती हैं। मैं तो केवल अपने प्यारे कृष्णको चाहता हूँ। मुझे मुक्तिसे क्या काम। जगत मिथ्या है, दु खाच्छादित है केवल ब्रह्म ही सत्य और सुख पूर्ण है। तुम सत्यको छोड़कर छाया पथपर चल रहे हो। अकेले आये अकेले जाओगे। कौन तुम्हारा इस जगमें साथी है। भजन करो, कीर्तन करो। आपसमे न लड़कर मन और

इन्द्रियोंसे लड़ो। सम्बन्धियोंके विछोहसे क्यों रोते हो, नाथके वियोगमें क्यों नहीं रोते। सासारिक प्रेम स्वार्थमय है, भगवद् प्रेम ही सच्चा है। योग साधन आज ही आरम्भ करो, कल कभी नहीं आता। ससार दो दिनका मेला है, जीवन क्षणिक है। भगवानमें लीन हो जाना ही समाधि है। नौकासे नदी पार करनेके सदृश भक्ति योग, तैरकर पार करनेके सदृश ज्ञान योग है। ज्ञानी पुरुषार्थसे ज्ञान प्राप्त करता है, भक्त आत्मसमर्पणसे, दर्शन वृत्ति रहनेपर सविकल्प समाधि होती है। वृत्ति लय होनेपर निर्विकल्प समाधि, चतुर्थ भूमिकामें जीवन मुक्ति होती है, शरीरका ज्ञान रहनेपर विदेह मुक्ति होती है। तुरीयावस्थामें जीवन मुक्ति है, तुरीयातीतमें विदेह मुक्ति है। स्वरूपमें जीवन मुक्ति है, अरूपमें विदेह मुक्ति। जाग्रत स्वप्नवत् दीख पड़ने की अवस्थामे जीवन मुक्ति है, सुषुप्तिकी भाति दीख पड़नेकी अवस्थामें विदेह मुक्ति है।

ॐ

वैराग्य प्राप्तिके साधन ।

(इनको सदा स्मरण रखना चाहिये)

"ओम् सद्गुर ब्रह्मणे नमः ।"

१—हरि ॐ विषय सुख क्षणिक है, भ्रामक है, काल्पनिक है ।

२—तिलभर आनन्द पहाड़ भर वेदनामे मिला हुआ है ।

३—भोगसे वासनाकी कमी कभी नहीं हो सकती । इसके विपरीत मनके भीतर तृष्णा और वासनाके कारण मन विक्षिप्त और अशान्त हो जाता है ।

४—विषय सुखकी अभिलाषा ब्रह्मज्ञान की शत्रु है ।

५—विषय सुखसे मनुष्य आवागमनके चक्करमें पड़ा रहता है ।

६—यह शरीर केवल मास, मज्जा, हड्डियों आदिके समूहसे बना हुआ एक पिण्ड है ।

७—मनके सम्मुख आत्मज्ञान, अनन्तसुख, परमशान्ति, ब्रह्म साक्षात्कार आदिके परिणाम रखना चाहिये ।

इन सात निर्देशोंके अनुसार चलनेसे मनके अन्दर विषय सुखकी अभिलाषा नहीं रह जायगी । वैराग्य, विवेक और मुमुक्षुत्वका अभ्यासीके अन्दर उदय होगा । विषय सुखके प्रति सदा दोष दृष्टि तथा ससारके प्रति मिथ्या दृष्टि रखनी चाहिये ।

एक बार इसका पाठ प्रतिदिन प्रातःकाल सोकर उठते ही करना चाहिये ।

हरि ॐ तत्सत् ।

ओम् शान्तिः ! शान्ति !! शान्तिः !!!

प्राक्कथन
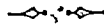
यह पुस्तक मेरे भिन्न भिन्न लेखों और पुस्तकोंके उपयोगी अश लेकर सकलित की गयी है। इसमें पीछेसे और कुछ जोड़कर पुस्तकको ठीक वना दिया गया है। यह पुस्तक आठ अध्यायोंमें वटी हुई है—"सुख आन्तरिक है", वैराग्य क्या है?", "सासारिक दु ख", "शरीर", "नारी", "ससार", "वैराग्य शतक का सार", तथा "शिक्षाप्रद कथायें।"

"सुख आन्तरिक है" नामक अध्यायमें मैंने यह दिखानेकी कोशिश की है कि वास्तविक सुख जिसकी कामना मनुष्य नित्य करता रहता है, जिसकी प्राप्तिके लिये ही वह सभी उद्योग करता है समारके नाशवान, असत् पदार्थोंमें नहीं है वल्कि मनुष्यके अन्तरतममें ही उसका वास है। जो कुछ क्षणिक सुख विषयोंसे मनुष्यको प्राप्त हो जाता है वह केवल आत्म-सुखकी प्रतिच्छाया मात्र है। वास्तविक सुख आत्म ज्ञान प्राप्त होनेपर ही मिल सक्ता है।

"वैराग्य क्या है?" नामक अध्यायमें मैंने यह दिखाया है कि वैराग्य घर द्वार छोड़कर भाग जानेको नहीं कहते। अपने कर्त्तव्यसे अपने उत्तर दायित्वसे अलग हो जानेका नाम वैराग्य नहीं है। वैराग्य तो मनकी एक ऐसी दशाका नाम है जिससे मनुष्यके अन्दर इस कोलाहलमय विश्वके अन्दर रहते हुए भी इसके प्रति आसक्ति न हो। सुविधाकी दृष्टिसे इस अध्यायको तेरह भागोंमें वाट दिया गया है। "वासनाका त्याग, मुक्तिका साधन वैराग्यके प्रकार, वैराग्यकी भिन्न भिन्न अवस्थायें, निवृत्ति मार्ग आदि तथा अन्य भागोंमें इस अध्यायको वाटकर वोधगम्य वनानेका प्रयत्न किया गया है।

"सासारिक दु ख" तीसरे अध्यायका शीर्षक है। सारे दु:खोंका कारण अज्ञान है, अत' आत्म ज्ञान प्राप्तकर अज्ञानको दूर करना चाहिये। तभी दु ख दूर हो सकते हैं अन्यथा नहीं। धन, कुटुम्बको आसानीसे छोड़ा जा सकता है। किन्तु यशोलिप्साका परित्याग बडा दुस्तर कार्य है। जबतक आध्यात्मिक पथपर खूब आगे मनुष्य नहीं चल लेता तबतक इस चीजको नहीं छोड सकता। आत्म-ज्ञान प्राप्त करनेके लिये यशोलिप्साका परित्याग भी आवश्यक है, मैंने इस बातको अनुभव किया है कि कितने योगियोंऔर साधकोंकी असफलताका प्रधान कारण आसक्ति है। कोई आसन बनाकर रहने लगता है और फिर उसको छोड़नेकी उसकी इच्छा नहीं होती। इसी तरह बहुतसे लोग शिष्य बना लेते हैं और फिर इन्हींमें लिपट जाते हैं। अत आवश्यकता है इन सबसे बचनेकी। मैंने इनकी बड़ी निन्दा की है।

चौथे अध्यायका शीर्षक 'शरीर' है, इस शरीरके प्रति आसक्ति होनेके कारण ही लोग दु खी रहा करते हैं। यह आसक्ति अज्ञानके कारण होती है। जब शरीरको ही सब कुछ समझ लेनेकी भावना उत्पन्न होती है तब शरीरसे सम्बद्ध अन्य दोप और विपय वासना भी जागरुक हो उठती हैं। विपय वासनाके कारण ही राग, द्वेप, क्रोध, लोभ, चिन्ता आदिका उदय होता है। यदि शरीरके प्रति आसक्तिका भाव न रहे तो इनका नाश तत्काल हो जाये, यह तभी सभव है जब आत्माको ब्रह्मका अश मानकर शरीरको उससे पृथक समझा जाये। ऐसा होते ही शरीरके प्रति आसक्ति न रहेगी और अन्तमें मनुष्य रोग दु खसे मुक्त हो जायेगा।

पाचवें अध्यायका शीर्षक है "नारी" इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि जहा कहीं स्त्रियों या पुरुषोंकी निन्दा की गयी है वहा उनके

लक्ष्यको ध्यानमें रखकर। जैसे पुरुषोंकी आध्यात्मिक उन्नतिका जहातक सम्बन्ध है स्त्रियोंके कारण इसमें बाधा उपस्थित होती है और इसी प्रकार स्त्रियोंकी आध्यात्मिक उन्नतिमें पुरुष बाधक हैं। मानव जीवनका सबसे बड़ा उद्देश्य ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करना है, केवल इसीलिये मानव शरीरकी प्राप्ति होती है अत इससे बढ़कर मूर्खता और क्या होगी कि मनुष्य अपने परम लक्ष्यको भूलकर इधर उधर भटकता फिरे। स्त्रियोंके प्रति अनुराग होनेसे मनुष्यके अन्दर घर द्वार, बाल, बच्चे, धन, सपत्ति सभीके प्रति आसक्ति हो जाती है जिससे फिर वह आवागमनके चक्करमें पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त पुरुषका स्त्रीके प्रति अथवा स्त्रीका पुरुषके प्रति प्रेम विशुद्ध एव पवित्र कभी नहीं होता। इस प्रेममें वासना रहती है, विषय भोगकी चाह रहती है। अत ऐसे प्रेमकी यहा पर निन्दा की गयी है।

'संसार' छठे आध्यायका शीर्षक है। अज्ञानके कारण इस विश्वको, जगत्‌को मनुष्य सत्य एवं अविनाशी मान लेता है। वह समझता है कि इसके परे और कुछ है ही नहीं। जो कुछ है यह ससार ही है। और इसी कारण विषय भोगको ही सुखोंकी अन्तिम सीमा वह समझ लिया करता है। यदि उसको इस बातका ज्ञान हो जाय कि ससार मिथ्या है एव वास्तविक सुखकी प्राप्ति यहा नहीं हो सकती वरन् अन्यत्र हो सकती है तो वह ससारमे लिपटे रहने के स्थानपर इससे विरक्त रहा करे। सासारिक पदार्थोंसे जो कुछ थोड़ा बहुत सुख प्राप्त भी हो जाता है उसको प्राप्त करनेके लिये उसे अपार कष्टोंका सामना करना पड़ता है तथा उससे अन्तमें शान्ति भी नहीं मिलती। मैंने इस अध्यायमें इस विषयको स्पष्ट करके समझानेका प्रयत्न किया है कि सासारिक पदार्थ सब नाशवान हैं तथा इनसे सुख और शान्तिकी प्राप्ति सम्भव

नहीं, केवल आनन्द स्वरूप ब्रह्मसाक्षात्कारसे ही उसकी प्राप्ति हो सकती है तथा सबको उसीके लिये प्रयत्नशील होना चाहिये।

'वैराग्य शतकका सार, सातवें अध्यायका शीर्षक है। इस अध्यायमें मैंने महाराज भर्तृहरिके वैराग्य शतकका सार संक्षेपमें देनेकी चेष्टा की है। जो लोग योग और वेदान्तपर अधिक पुस्तकें नहीं प्राप्त कर सकते उनके लिये यह बहुत उपयोगी होगा।

आठवें अध्यायमें कुछ शिक्षा प्रद कथायें संग्रहीत की गयी हैं। अतः इसका शीर्षक भी "शिक्षाप्रद कथायें" रखा गया है। इन कथाओंमें प्राचीन भारतके सन्तों और योगियोंका वर्णन किया गया है जिसके पाठसे उत्तरोत्तर वैराग्य भावनाके गम्भीर होनेमें सहायता मिलेगी। वैराग्य सम्बन्धी इस प्रकारकी पुस्तकका एक दम अभाव था? अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि जनताका इससे अधिक कल्याण होगा।

अन्तमें श्रीशंकराचार्यकी प्रश्नोत्तरी दे दी गयी है जिसके पाठसे संसारके प्रति अनासक्तिका भाव आता है। अन्तमें भगवानसे मेरी प्रार्थना है कि प्राच्य एवं पाश्चात्य देशोंके योग और वेदान्तके प्रेमी जनोंको इस पुस्तकके पाठसे पूर्ण लाभ होगा।

आनन्दकुटीर।
१५—९—१९३८

स्वामी शिवानन्द।

विनय

भगवन्, महाप्रभु ! तुम सूक्ष्मतम हो। तुमको पहिचानना बहुत कठिन है। तुम भूत, भविष्य और वर्तमान हो, केवल तुम्हीं तुम हो और कुछ भी नहीं है। तुम करुणा और मैत्रीके अगाध सागर हो। केवल भक्त ही तुमको जान सकते हैं। तुम निर्लेप हो, निर्विकार हो, निरानन्द हो, फिर भी तुममें यह सारे गुण हैं। तुम्हारे ऐश्वर्य और महिमाका वर्णन करना बहुत कठिन है। तुम हमारे माता, पिता, गुरु, स्वामी सब कुछ हो। मेरी रक्षा करो। मुझे रास्ता दिखाओ। मुझे आवागमनके इस चक्रसे मुक्त करो।

हे प्रभु ! तुम अन्तर्यामिन् हो। तुम विश्वेश हो, सर्वात्मा हो, सबके रक्षक हो, तुम्ही सब कुछ हो। सब तुममें है, तुम सबमें हो। तुम्हीं मोक्षके देनेवाले हो, तुमको अगणित प्रणाम।

मेरे प्रभु ! तुम सूर्य हो तो मैं किरण हूँ, तुम सागर होतो मैं लहर हूँ, तुम गंगा हो तो मैं जलकण हूँ, तुम बाग हो तो मैं फूल हूँ, तुम विद्युत् हो तो मैं बल्ब हूँ, तुम मनोरम भूमिपृष्ठ हो तो मैं दूर्वादल हूँ। केवल तुमसे ही प्रेम करनेसे मैं अमर हो गया हूँ। यम हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। नाथ ! तुमको पुन पुन प्रणाम।

हे करुणाधाम ! तुम्ही आधार हो, रक्षक हो, स्रष्टा हो, अन्तर्यामिक हो, स्वामिन् हो, परम लक्ष्यके प्रदाता हो। तुम अज्ञान धनके विनाशक हो, अपने भक्तोंके दु ख दर्दको हरनेवाले हो तथा भय तापको दूर करनेवाले हो। हे परम आदरणीय देव तुमको मेरा दण्डवत स्वीकार हो। मैं तुम्हारी शरणमें

आया हूँ। मुझे शुद्ध बुद्धि दो, ज्ञान दो एवं अपने चरण कमलोंमे स्थान दो। हे विश्वेश! मैं धन सम्पत्ति, राज्य सम्पदा, मोक्ष कैवल्य किसीकी भी कामना नहीं करता। किन्तु मेरी एक मात्र अभिलाषा है कि लोगोंके दु:ख दर्द मिट जायें, लोग तकलीफोंसे मुक्त हो जायें। तुम दया सागर हो, सर्व शक्तिमान हो। यह दया सबके ऊपर कर सकते हो।

चार

आध्यात्मिक

रत्न

१—संसारके दुःख दर्द याद करो। २—मृत्युसे सदा डरो।
३—सन्तोंको कभी न भूलो। ४—ईश्वरका भजन नित्य करो॥

पहले और दूसरेसे वैराग्यकी भावनाकी उत्पत्ति
होगी। तीसरेसे, उत्साह मिलेगा।
चौथे से आत्मज्ञान प्राप्त होगा
एवं ब्रह्म साक्षात्कार करने
की क्षमता उत्पन्न
होगी।

प्रकाशक का वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक सन्त जगत्के उज्वल सितारे, अध्यात्म विद्याके प्रकाण्ड पण्डित, ऋषि तुल्य, योगिराज श्री स्वामी शिवानन्दजी सरस्वतीके हृदय-सागरके भाव मोतियोंकी सुन्दर माला है। वैराग्यके पथ पर आरूढ़ होनेवाले, अध्यात्म प्रेमी श्रद्धालु सज्जनोंके लिये यह प्रवेश द्वार है। पुस्तकका एक-एक शब्द प्रकाश स्तम्भका कार्य देता है और विवेक पूर्ण सच्चे वैराग्यका तत्व बतलाता है। सच्चा वैराग्य क्या है, वैराग्य भाव प्राप्त करनेके कौनसे उपाय हैं, जीवनका अन्तिम ध्येय क्या है आदि विषयोंपर इस पुस्तकमें बड़ी सुन्दर, सरल सुबोध और भावमयी भाषामें प्रकाश डाला गया है।

आजकी इन आंखोंको अपने तीक्ष्ण प्रकाशसे चौंधियानेवाले विलासिता, फैशन और कृत्रिमताके युगमें, जब कि देशमें अश्लील, कुत्सित साहित्यकी बाढ़ सी आ गई है, इस प्रकारके आध्यात्मिक, धर्म प्राण साहित्यकी उपयोगिता और अधिक बढ़ जाती है। इस पुस्तकके अध्ययनसे पाठककी भावनाएँ उदात्त, प्रवृत्तियां परिमार्जित और विचार परिष्कृत होंगे—ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है।

धर्मके क्षेत्रमें आत्मानुभव और क्रियात्मिकताका बहुत अधिक मूल्य है। प्रस्तुत पुस्तक श्रद्धेय स्वामीजीने गम्भीर अध्ययन, साधना और आत्मानुभवके उपरान्त लिखी है, इसलिए इसका एक एक शब्द अपना अलौकिक प्रभाव रखता है। यह वह सोना है जिसे स्वामीजीने अपनी हृदय रूपी गुहामें प्रवेश करके निकाला है। यह वह निर्मल प्रकाश है जिसे स्वामीजीने करुणावरुणालय,

जगदीश्वरके चरणोंमें बैठकर प्राप्त किया है। पुस्तकके श्रद्धापूर्वक अध्ययन और मननसे पाठकोंके जीवनमें क्रान्तिकारी परिवर्त्तन होगा।

इस मँहगीके ज़मानेमें जब कि प्रत्येक वस्तुके मूल्यमें कई गुना वृद्धि हो चुकी है, इस पुस्तकका प्रकाशन, अध्यात्म-प्रेमी पाठकोंकी सेवाके पुनीत भावसे प्रेरित होकर ही हमने किया है। यदि इस पुस्तकके अध्ययनसे किसी भी पाठकका पथ प्रदर्शन हो सका, उसकी सोई हुई आध्यात्मिक शक्तियाँ जाग उठी तो मैं अपना प्रयास सफल समझूँगा।

अन्तमें मैं श्री पूज्य स्वामीजी महाराजको अन्तस्तलकी कोमल भावनाओंके साथ हार्दिक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने सभी पुस्तकोंके हिन्दी प्रकाशनकी सहर्ष अनुमति प्रदान कर, हमें कृतज्ञता पाशमें आबद्ध कर पाठकोंकी सेवाका स्वर्ण अवसर प्रदान किया है।

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी।
संवत् २०००

विनीत—
रलियाराम गुप्त।

विषय सूची

प्रथम प्रकरण

द्वितीय प्रकरण

वैराग्य क्या है ?

तृतीय प्रकरण

सासारिक दु.ख

चतुर्थ प्रकरण

पञ्चम प्रकरण

षष्टम प्रकरण

सप्तम प्रकरण

अष्टम प्रकरण

शिक्षाप्रद कथायें

नवम प्रकरण

जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड,

जीवनको उन्नत बनानेवाले

हमारे कुछ प्रकाशन

(१) जीवन सौरभ—

प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनके विभिन्न पहलुओंपर प्रकाश डाला गया है। इसमें यह बतलाया गया है कि साधारण परिस्थितिमें रहते हुए भी हम किस प्रकार अपने जीवनको आदर्श बना सकते हैं। इस पुस्तकको पढ़ें और अपनी सन्तानके हाथमें दें। मूल्य केवल ।-)

(२) देशके नौनिहालोंसे—

नवयुवकों एव छात्र तथा छात्राओंके लिये अनुपम उपहार। उन नव-युवकोंके लिये ही इस पुस्तकका प्रणयन हुआ है, जिनके ऊपर देशको आशा है, जो देशके भावी गौरवके सूचक हैं अवश्य ही उन्हें यह पुस्तक पढनी चाहिये। मूल्य केवल -)

(३) सदाचारका महत्व—

पाश्चात्य सभ्यता और रोशनीकी चमक दमकमें पड़कर हमारे युवक जिस भ्रान्तिमें पड़े हुए हैं तथा अपनी और देशकी हानि कर रहे हैं यह सर्व विदित है। जो भारत ससारका गुरु था वह आज पश्चिमका अनुकरण करना ही अपना धर्म समझता है और इसलिये उसका पतन हो गया है। इस समय देशके युवकोंको सन्मार्गपर ले जानेकी आवश्यकता है। इन्हीं विचारोंसे प्रेरित होकर इस पुस्तकको प्रकाशित किया गया है। मूल्य -)

८२, पुराना चीनावाजार स्ट्रीट, कलकत्ता। शाखा—हौजकटरा, बनारस।

(४) राष्ट्रीय जागरणका इतिहास—

स्वदेशके प्रति जिसके अन्दर प्रेम नहीं है, वह व्यर्थ ही जीवन-यापन करता है। जो देशके प्रति कुछ त्याग नहीं करता वह पशु सदृश है। ऐसे लोगोंको चाहिये कि कमसे कम राष्ट्र-सम्बन्धी साहित्यका अध्ययन अवश्य करें। ऐसे साहित्यका प्रणयन हुआ तो अवश्य है, किन्तु सक्षेपमें, सबके योग्य, सुलभ, सदा पास रखने योग्य साहित्यका प्रकाशन आजतक नहीं हुआ था। इसी अभावकी पूर्तिका विचार कर इसको प्रकाशित किया गया है। मूल्य केवल ≠)

(५) कांग्रेस चार्ट

इसमें बड़े सुबोध और सरल ढङ्गसे काग्रेसके जन्मकालसे लेकर अब तकके अधिवेशनोंका विवरण, सभा पति, स्थान, समयकी सूचना और उस वर्ष विशेष रूपसे क्या कार्य हुआ, इसका उल्लेख है। चार्ट सुन्दर इमीटेशन आर्ट पेपर पर साइज २०"×३०", दो रङ्गोंकी मनोहर छपाई और लटकानेके लिये टीन तथा फीते आदिसे सुसज्जित करके प्रकाशित किया गया है। मूल्य ≠)

(६) कांग्रेसके सभापति (सचित्र)

प्रस्तुत पुस्तकमें हमारी एक मात्र राष्ट्रीय संस्था काग्रेसके राष्ट्रपतियोंके जीवन चरित्र तथा उनके समयमें घटी सब घटनाओंका वर्णन है। इससे हमें ज्ञात होगा कि किस प्रकारसे किनके द्वारा किन उद्देश्योंको लेकर काग्रेसका जन्म हुआ। किस प्रकारसे काग्रेस एक राष्ट्रीय सस्था बनी शुरूमें इसके सभापति राय बहादुर सर आदि सरकारके उच्च पदाधिकारी होते थे। इन सबका वर्णन आपको इस पुस्तकमें मिलेगा सब राष्ट्रपतियोंके चित्र भी दिये गये हैं। मूल्य केवल ।)

(७) स्वास्थ्य-पत्र

यदि यह कहा जाय कि स्वास्थ्य ही जीवन है और अस्वस्थ रहना ही मृत्यु है तो कोई अत्युक्ति न होगी। एक धनहीन स्वस्थ जीवनकी दैनिक आवश्यकताओंके लिये कष्ट सहते हुए उस करोड़पति अस्वस्थसे कहीं अच्छा है, जो स्वर्ग-तुल्य ऐश्वर्य पाकर भी जीवनमें सुख पूर्वक उसका उपभोग नहीं कर पाता। यदि आप अपने जीवनको सुखपूर्वक व्यतीत करना चाहें तो प्राकृतिक नियमोंका पालन कीजिये। इन नियमोंकी जानकारी हमारे स्वास्थ्य-पत्रमें अच्छी तरह करायी गयी है। २०"×३०" साइजके इमीटेशन आर्ट पेपर पर बहुत ही आकर्षक ढङ्गसे दो रङ्गोंमें यह चार्ट छापा गया है। इसकी बधाई भी बड़े सुन्दर ढङ्गसे की गयी है। मूल्य केवल ≠)

मानव-जीवनका रहस्य

इस पुस्तकके अध्ययनसे आपको पता चलेगा कि मानव-जीवन किन आधारभूत नियमोंपर टिका हुआ है, किन नियमोंके पालनसे-मानव-जीवन सुख समृद्धि और यशकी ओर अग्रसर हो सकता है। आज प्रकृतिके नियमोंकी अवहेलनासे ही मानव-जाति दिन-प्रतिदिन विनाशोन्मुख हो रही है। जीवनका सच्चा सुख प्राप्त करनेके लिये इन नियमोंका जानना नितान्त आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तकमें जीवनको सुखमय बनानेवाले प्राकृतिक नियमोंकी विशद व्याख्या है। मूल्य ।)

प्रकाशक—जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड,

प्रधान कार्यालय—
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता।

शाखा—
प्रिण्टिंग हाउस, हौज कटरा,
बनारस।

वैराग्य के पथपर

प्रथम प्रकरण

खुशीका चश्मा अन्दर बहता है

मनुष्य सुखकी कामना करता है। दुःखसे दूर भागता है। विषय-सुखकी खोजमें वह आकाश-पातालके कुलाबे मिला देता है। किन्तु इतनी दौड़-धूपके बाद होता क्या है? अज्ञानी मानव मायाकी भट्ठीमें पड़कर तपता है, उसे यह भी ज्ञान नहीं रहता कि जिन सांसारिक पदार्थोंमें वह सुख ढूंढता है, वे

नश्वर, क्षणिक, देश, काल परिस्थितिके अनुरूप चलनेवाले एव अस्थायी हैं। यही कारण है कि इसको अभिलषित सुखकी प्राप्ति नहीं होती।

यह विश्व अपूर्ण है, यहा जीवन अस्थिर है। हम नित्य देखते हैं कि कितने स्वस्थ, सुन्दर, सुडौल व्यक्ति जिनके सम्बन्धमे कोई कल्पना भी नहीं कर सकता, अकालमें ही काल-कवलित हो जाते हैं। हम देखते हैं कि जो व्यक्ति अभी हमसे वात कर रहा है, हँस-हँसकर वोल रहा है, वह दूसरे ही क्षण भूलुण्ठित है। एक सुविख्यात वैरिस्टर जिसकी ओर अपने मुकदमेकी जीतके लिये मुवक्किल सतृष्ण नेत्रोंसे देख रहे हैं, टेलीफोनसे वातें कर रहा है, खानेके लिये जा ही रहा है, कि अचानक सीढ़ियोंपर गिरता और सदाके लिये ही इस लोकसे कूच कर जाता है। ऐसा व्यापार सृष्टिमे नित्य हुआ करता है।

ससारकी सारी वस्तुएँ जड़ हैं। उनमें रत्ती-भर भी आनन्द नहीं। विषय-भोग से भी जो सुख हमे प्राप्त होता है वह आत्मिक-सुखकी प्रतिच्छाया मात्र है। एक कुत्ता हड्डीका टुकड़ा सड़कपर पाता है। वह उसको चाटता है, निचोड़ता है। इसमें ही उसको आनन्द आता है। वह सोचता है कि सूखे हड्डीके टुकड़ेमेंसे ही गर्म रक्त निकलता है, जो इस हड्डीके टुकड़ेको स्वादिष्ट वनाता है। पर यह उसकी भूल है। वास्तवमे रक्त उसके मूढ़मेंसे निकलता है, हड्डीमेंसे नहीं"। ठीक ऐसे ही मूढ मानव सोचता है कि विषय-भोगमें जो कुछ आनन्द प्राप्त होता है वह भोग्य वस्तुसे ही प्राप्त होता है। अनन्त, निस्सीम सुख, परम शान्ति, केवल आत्मामें ही मिल सकती है। जीवात्मा ही आनन्दस्वरूप है।

धन-कुवेरों और नृपतियोंके हृदयमे भी अशान्ति, असन्तोष और परेशानी वनी रहती है। ऐश्वर्य और सुखकी गोदमें पले हुए, सांसारिक आनन्द-

की चरमावस्थापर पहुंचे हुए लोगोंके भीतर भी दुःख, पीड़ा और वेदना वर्तमान रहती है। संसारमें कौन सदा सुखी है? और तो क्या अपने एक पुत्रके विवाहोत्सवपर किसी अन्य मृत्युकी याद भी लोगोंको विकल कर देती है। मनका स्वाभाविक रूप ही ऐसा है कि इसके संकल्प विकल्पके तारपर सुख-दुःखकी मात्रा भी हृदय-गतिके उतार चढ़ावकी भांति न्यूनाधिक रूप धारण किया करती है। हृदयकी धमनियोंमें संकोच, विकासकी क्रियाकी भांति दूधमें पानीकी भांति, सुख-दुःख सदा एक दूसरेमें मिले रहते हैं। सुख-भोगके समय मनुष्यको सदा यह चिन्ता परेशान करती है कि कहीं सुखकी अवधि शीघ्र समाप्त न हो जाय। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सुखोपभोग करनेके समय भी दुःख हमारा पिण्ड नहीं छोड़ता। यदि इस दुःखके कारणको किसी प्रकार दूर कर दिया जाय तो भी किसी न किसी प्रकार, किसी न किसी रूपमें वह दुःख प्रकट हो ही जाता है। चाहे वह हमारे किसी प्रकारके नाशमें हो अथवा रोग, शोकमें हो। दुःख तो दुःख ही है। मानसिक हो या शारीरिक।

धन-सम्पत्तिसे अमरत्वकी प्राप्ति असम्भव है। उपनिषद् पुकार पुकार कहते हैं—

न कर्मणा, न प्रजया, न धनेन, त्यागेनैकेन अमृतत्वमानशुः।

केवल वस्तु-मात्रसे विरक्त हो जानेको त्याग नहीं कहते। वास्तविक त्याग अहंभाव, स्वार्थभाव, मोह, देह-अभिमानके त्यागको कहते हैं। वासनाका त्याग ही वास्तविक त्याग है।

नर-तन और वह भी पुरुष शरीर पाना बड़ा कठिन है। कहा जाता है कि तीन चीजें बड़ी कठिन हैं और वे ईश्वरकी कृपाके विना नहीं मिल सकती।

वे ये हैं—मानव शरीर, मुक्तिकी अभिलाषा, तथा गुरुका वरद हस्तकमल। पूर्व जन्मके सस्कारोंके कारण यदि किसीको मनुष्य शरीरकी प्राप्ति हो और वह भी पुरुषयोनि तथा इसके साथ ही साथ बुद्धि भी, तो उसको मोक्ष प्राप्तिके लिये अवश्य ही उद्योग करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करता तथा विनाशी अनित्य पदार्थोंसे लिपटा रहता है वह आत्महनन करता है। उसके जीनेसे क्या लाभ। इसपर धृष्टता-पूर्वक तुम यह पूछ सकते हो कि आत्मसाक्षात्कार वा आत्माकी प्राप्तिसे क्या लाभ? यहा पर यह बतला देना आवश्यक प्रतीत होता है कि आत्माकी प्राप्ति वा आत्मसाक्षात्कारसे ही मनुष्य आवागमनके चक्रसे और इसके भयकर परिणाम-रूप ससारके बन्धनोंसे भी मुक्त हो जाता है। श्रुति कहती है·—

"एष आत्माऽपहतपाप्मा विजरो विमृत्युर्विशोको विजिघत्सोऽपिपास· सत्यकामः सत्यसकल्पो यथाह्येवेह प्रजा अन्वा विशन्ति यथानुशासन यं यमन्तमभिकामा भवन्ति यं जनपदं यं क्षेत्रभागं तं तमेवोपजीवन्ति।" (छादोग्योप०)

यह आत्मा जिसे पाप छूता नहीं अव्यय अजर, अमर, शोक, और भूख प्यासये रहित, सत्यकाम और सत्यसकल्प है। इस अविनाशी परमतत्वकी खोज सबको करनी चाहिये, इसको ही समझना चाहिये, क्योंकि इसको जाननेके बाद अविदित कुछ नहीं रह जाता, जो इसको जान लेता है वह सभी लोकोंको प्राप्त करता है और उसकी कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।

यह भी छान्दोग्योपनिषद्की ही महत्वपूर्ण घोषणा है।

"यो वै भूमा तत्सुखं, नाल्पे सुखमस्ति, भूमैव सुखं, भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति भूमानं भगवो विजिज्ञास इति"

जो पूर्ण है वही सुख है, जो अल्प है उसमें सुख नहीं है। भूमा ही सुख है। भूमाको ही जानना चाहिये। हे भगवत्, भूमाका ही अन्वेषण करना

इस जगत्में मनुष्य असन्तुष्ट निराश और अशान्त हैं। मनुष्य इस बातका अनुभव करता है कि उसे किसी वस्तुका अभाव है, किन्तु उसको किस बातकी कमी है, वह यह समझ नहीं पाता। वह जिस अभाव या त्रुटिका अनुभव अज्ञात रूपसे करता है, उसकी पुष्टि, तुष्टि और शान्ति अपनी महत्वाकांक्षाओंकी पूर्तिमें ही प्राप्त करनेकी आशा रखता है, पर जब उसकी सांसारिक महत्वाकांक्षायें पूर्ण हो जाती हैं, तब बड़े ही दुःख और निराशा-भरे हृदयसे वह अपनेको मोहमायाके महाजालमें ही ग्रस्त पाता है। इस सांसारिक महत्वाकांक्षाकी पूर्णतामें उसे सुख प्राप्त नहीं होता। वह विश्वविद्यालयकी जिन डिग्रियों, उपाधियों, प्रमाण-पत्रों, सम्मान, प्रतिष्ठा, योग्यता अधिकार, मान-मर्यादा, कीर्ति, यश, और नामके लिये लालायित था, अपने बाहुबलसे प्राप्त कर लेता है, विवाह-सुख' का अनुभव कर लेता है, संतति-सुखका उपभोग करता है, हृदयको आनन्दित करनेवाले अत्यन्त सुन्दर और रूपवान बच्चोंको गोदमें खेलाता हुआ फूला नहीं समाता, संक्षेपमें वह सुखके सभी साधनोंकी सिद्धि कर लेता है, तथापि सच्ची शान्ति वा तुष्टि वह नहीं पाता है। उसको तब अनुभव होता है, कि सांसारिक मान, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा शान्ति देनेमें बिलकुल असमर्थ हैं। यह विश्व केवल भ्रमजाल है। सुखकी प्राप्तिके लिये वह अथक चेष्टा करता है। मान, मर्यादा, अधिकार सब कुछ वह प्राप्त करना चाहता है और अपने उद्देश्यमें वह सफल भी होता है। पर क्या जिस चीजके लिये वह इन

सबको प्राप्त करता है वह उसको इन सबकी प्राप्तिके अनन्तर मिलती हैं ? कभी नही। वह तब अनुभव करता है, कि ये चीजें बेकार थीं, उसकी शक्ति व्यर्थ गयी तथा उसकी अभीप्सित वस्तु भी उसको न मिली। बड़े बड़े साधु सन्यासी, ऋषि, महर्षि, आचार्य, सदा कहते हैं कि सब प्राणियोंके अन्दर जो असन्तोष, दु ख, पीड़ा, अशान्ति बनी रहती है और अपनी परिस्थितियों और शरीरकी विभिन्न चेष्टाओंमें अपने मनके अनुकूल ही जो शान्ति प्राप्त नहीं होती उसका प्रधान कारण आत्मज्ञानके अभावमें चिरसगी "आत्मा" के सुन्दर सहयोगसे वचित रहना ही है,जो तुम्हारी हृदय-गुहामें नित्य विराजमान है, जो सदा तुम्हें अपनी भुजाओंमें लिपटा लेनेके लिये तैयार है, यदि तुम भी सच्चे हृदयसे मिलनेको तैयार हो, यदि तुम्हें भी 'उसकी ही सच्ची तलाश हो, और आत्मतत्वकी ही सच्ची भूख और प्यास हो। इस प्रकार यदि मनुष्य अपनेको शरीर ही न समझे, यदि उस स्वय-प्रकाश, सदा-सहायक, आत्माका साक्षात्कार करना चाहे, यदि उसे वास्तविक आध्यात्मिक पिपासा हो, तो मनुष्यको कुछ भी अप्राप्य नहीं रह जाता, आत्मसाक्षात्कार होनेपर विश्वमें कोई ऐसी वस्तु नहीं रह जाती जिसको प्राप्त करनेके लिये उद्योग करना शेष रह जाय।

यदि रुपये भर दिखाई पड़नेवाले सुखमें वास्तविक आनन्द केवल एक आना हो, तथा दु ख पन्द्रह आने भर हो, उसे सुख नहीं कह सकते। जिस सुखमें दुःख, डर और चिन्ताका मिश्रण हो वह क्या कोई सुख है ? और यदि इस एक आना भर दीख पड़नेवाले सुखका भी विश्लेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि यह सुख भी वास्तवमें सुख नहीं है। यह केवल भ्रम है, मनकी कोरी कल्पना है। ऐ मूढ़ मानव! अब भी तो जाग। आँखें खोल। विवेक-बुद्धिको विकसित कर। तभी तुझे आनन्द और शान्ति मिलेगी।

नित्य, निरुपाधिक, निरतिशय आनन्द केवल आत्मज्ञान तथा ब्रह्मसाक्षात्-कार होनेपर ही मिल सकता है। सासारिक पदार्थोंसे विरक्ति होनेपर ही सुख मिल सकता है। अत सासारिक पदार्थोंसे मुख मोड़कर भगवान्‌के श्रीचरणोंका ही आश्रय लेना चाहिये। वैराग्य-भावका विकास करना चाहिये। वैराग्य अध्यात्म-पथका उद्‌गम स्थान है। मनुष्य विषय-वासनाके पीछे क्यों दौड़ता फिरता है? सुखके सम्बन्धमें उसकी क्या धारणा है? क्या सस्कारोंके वशमें होकर ही उसको विषय-भोग में बार-बार लिप्त होना पड़ता है? क्या मनुष्य परिस्थितियोंका दास है? क्या मनुष्य अपने कार्यों तथा उद्योगों द्वारा सस्का-रोंको नहीं मिटा सकता है? अज्ञानके कारण मनुष्य आनन्दकी खोजमें इधर-उधर भटकता फिरता है। धन, सम्पत्ति, स्त्री, सन्तान, नाम, यश यही वह ससारमें चाहता है। आत्मसुख, परमशान्ति, अक्षय आनन्द आध्यात्मिक ज्ञानकी उसको तनिक भी चिन्ता नहीं रहती। उसके प्रति उसको रुचि ही नहीं होती, वरन् वह उनको चाहता नहीं। उच्च एव आध्यात्मिक विषयोंपर चर्चा करनेसे वह घबड़ाता है। जो लोग ऐसी चर्चायें करते हैं उनसे वह दूर रहना चाहता है। किन्तु यह निश्चित है कि पुरुशार्थी व्यक्ति उद्योगसे अपने संस्कारोंको मिटानेमें समर्थ हो सकता है। मनुष्य परिस्थितियों अथवा अव-स्थाओंका दास नहीं है। वह अपने प्रारब्धका स्वामी है। दुनियाकी हलचलोंसे घिरे रहनेपर भी, अधिक कार्य-व्यस्त होनेपर भी मनुष्यके मनमें चाहे क्षण-मात्रके लिये ही सही, शान्ति और विवेकपूर्ण विचारोंका उदय होता है। तब वह दुनियाकी सकीर्णताओंसे ऊपर उठकर जीवनकी उच्च समस्याओंपर विचार करने लगता है। उसके मनमें जगत्‌की पहेलीको समझने और सुल-झानेका भाव उत्पन्न होता है। वह सोचता है, "मैं कौन हू?" कहासे

आया ? यह जगत् कहासे उत्पन्न हुआ ? जिसके अन्दर इसको समझने और जाननेकी सच्ची लगन होती है वह इन विचारोंमें तन्मय हो जाता है, सत्यके पीछे पड़ जाता है, विवेक-बुद्धि उसके अन्दर उत्पन्न होती है, वैराग्यका भाव उसके भीतर भर जाता है। वह चित्त एकाग्र कर ध्यानमग्न हो जाता है तथा शरीर एव मनको शुद्ध कर अन्तमे आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। किन्तु जिस मनुष्यके मनमे वासनाओंका प्रभाव रहता है, जो ससारको ही सब कुछ समझ लेता है वह इन बातोंपर बिल्कुल ही ध्यान नहीं देता और परिणामस्वरूप उसको राग-द्वेष का शिकार बनना पड़ता है। उसका मन इधर-उधर भटका करता है तथा वह सासारिक पदार्थोंसे लिपट जाता है।

ओह ! विषयी जीवन कितना क्षणभंगुर है। यदि मनुष्य इसपर तथा इसके परिणामपर शान्त-चित्तसे विचार करे, यदि वह इस बातको समझ सके, कि विषय-भोगके अनन्तर दु ख, चिन्ता, परेशानी एव मृत्यु निश्चित है तो वह कभी भी उनसे लिप्त न हो और वैराग्य-भाव उसके भीतर उत्पन्न हो जाय। क्षणिक वैराग्य कभी-कभी लोगोंके अन्दर उत्पन्न हो जाया करता है, किन्तु एक तो वह किसी स्वजनकी मृत्युके कारण उत्पन्न होता है या धन-सम्पत्तिके विनाशके कारण। ऐसा वैराग्य क्षणिक होनेके कारण आध्यात्मिक पथपर अग्रसर होनेके लिये तनिक भी सहायता नहीं प्रदान कर सकता। वास्तविक वैराग्य दृढ चिन्तन एव विवेकके उपरान्त उत्पन्न होता है और वही स्थायी होता है।

प्रकाशके सामने अन्धकार नहीं ठहर सकता। ठीक उसी भाति आध्यात्मिक आनन्दके सामने तो विषय-सुख टिक भी नहीं सकता। अत. सासारिक पदार्थोंके प्रति पूर्ण-रूपेण घृणाका भाव अपने भीतर होना चाहिये। वास-

नाओंको निर्मूल कर देना चाहिये। विषय-भोगकी ओरसे मनकी प्रवृत्तिको बदलकर अपने लक्ष्यकी ओर लगा देना चाहिये। इस प्रकार वैराग्य-भावकी उत्तरोत्तर वृद्धि होगी।

मनुष्य स्वय अपना जीवन विषम एव सङ्कटापन्न बना लेता है। अपनेको लोग सांसारिक दल-दलमें फँसा लेते हैं, अपनी आवश्यकताओंको तथा वासनाओंको बढ़ा लेते हैं और इस प्रकार बन्धनकी शृङ्खलामें प्रतिदिन एक तार बढ़ाते चले जाते हैं। सरल जीवनको छोड़कर लोग ऐशो-इशरत में डूब जाते हैं, यही कारण है कि ससारमें इतनी भीषणता और बेकारी फैली हुई है, लोग भूखों मरते हैं, व्यापार चौपट हो गया है, सर्वत्र अशान्ति है। कहीं भुकम्प, कहीं प्रलयकारी बाढ़, कहीं भीषण अग्नि-ज्वाला। पति-पत्निमें तलाक का रोग। जाति-जातिमें, राष्ट्र-राष्ट्रमें प्रतिस्पर्द्धा, होड़ और प्रतिद्वन्द्विता। इन सबका परिणाम कितना भीषण है। जीवन अनिश्चित हो गया है। ससारमें विषमताका एकछत्र राज्य है। क्या इसका कोई उपाय नहीं? क्या इस रोगका कोई उपचार नहीं? क्या ये परेशानिया और कठिनाइया कम नहीं हो सकतीं? अवश्य हो सकती हैं। किन्तु इसका एक ही उपाय है। मनुष्यको सन्तोष रखना चाहिये, शुद्ध और पवित्र होना चाहिये तथा सबके साथ प्रेम करना चाहिये और "आत्मवत्सर्वभूतेषु" का भाव अपने भीतर ले आना चाहिये। शुद्ध भावसे सर्व-विषयोंपर ठीक दृष्टिसे विचार करना चाहिये, अच्छी तरहसे सोचना चाहिये एव भलीभाति कार्य करना चाहिये। मनके भावोंको शुद्ध रखना आवश्यक है। भक्ति और ध्यानका आश्रय लेना चाहिये।

ऐ मानव! तू भ्रम छोड़। तेरे अन्दर अभी सच्चे वैराग्यका उदय नहीं हुआ है। तेरी यह विरक्ति विशेष परिस्थितियोंके कारण हुई है।

ऐसी विरक्तिसे आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। क्योंकि इस प्रकारके वैराग्यका अन्त उसी क्षण हो जाता है जिस समय मनकी चाही हुई वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है। मन तो वल्कि उस वस्तुकी प्रतीक्षामें रहता है। हो सकता है कि साधकके संस्कार आध्यात्मिक हों किन्तु जबतक नित्यानित्य-वस्तु-विवेक-जनित वैराग्य उत्पन्न नहीं होगा तब तक आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं। सुकुमारी कोमलांगी बालाओंके पीछे वैराग्यका होना जितना ही आवश्यक है उतना ही कठिन है। बहुतसे पाखण्डी लोग अपनेको वीतराग उद्घोषित करते हैं पर इससे लाभ क्या? इन दिनों एक ओर तो कितने ही सुशिक्षित नवयुवक और विद्वान् डाक्टर आदि सुप्रतिष्ठित और सम्भ्रान्त व्यक्ति भी, गेरुआ धारण किये और हाथमें मिट्टीके पात्र, कमण्डलु, वा तूँवा लिये हुए उत्तर-काशी या गङ्गोत्तरीकी गिरि-गुहाओंका अनुसन्धान करनेके लिये आते हैं और दूसरी ओर "विज्ञान जगत्" के तत्त्वानुसन्धान करनेवाले विद्यार्थी और कितने राजकुमार भी "कालर नेकटाई" सहित रेशमी वस्त्रोंमें, पञ्जाब और काश्मीरकी यात्रा अपनी अवस्था वा वयके अनुरूप विवाह-योग्य लावण्यमयी और रूपमयी बालिकाओंकी ही टोह, तलाश वा खोजके लिये कर रहे हैं!" काश्मीरकी उपत्यकाओंमें भी मदन—शरसे विद्ध होकर दर-दर मारे फिरते हैं। काम-जनित विषय-सुखकी यह मृगतृष्णा ही ऐसी है। कहा भी है :—

"जटिलो मुण्डी लुञ्चितकेशः काषायाम्बरवहुधृतवेशः
पश्यन्नपि नच पश्यति लोकः उदरनिमित्तं वहुकृतशोकः"
(भज गोविन्दं भज गोविन्दं भज गोविन्दं मूढ़मते)

संसार दुःखमय है या सुखमय। यदि संसारमें सुख है तो अनेक विद्वान् युवक क्यों संसारसे विरक्त होकर जङ्गलोंमें, पहाड़ोंकी गुफाओंमें तथा ऐसे ही स्थानोंमें बैठकर भगवद्भजन करते रहना चाहते हैं? और यदि संसारमें दुःख है तो क्यों बहुतसे लोग कामिनी, कञ्चनके पीछे पड़कर अपना जीवन नष्ट करते रहते हैं। ये सब मायाके खेल हैं। मोहके प्रमाद हैं।

जगत्को पहेलीको, जीवनकी पहेलीको समझनेका उद्योग करना चाहिये। विवेक और बुद्धि प्राप्त करनी चाहिये। सतसङ्ग करना चाहिये। आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये उद्योगशील होना चाहिये। योग-वासिष्ठ एवं उपनिषदोंका अध्ययन करना चाहिये। तभी मनुष्य जीवनके सम्मुख आनेवाली विभिन्न समस्याओंको समझ सकता है, हल कर सकता है। संसारमें सुखका लेश भी नहीं है। सुखको अपने अन्दर खोजना चाहिये। क्या राज्य-सुख अच्छा नहीं? क्या ऐशो-इशरत, भोग-विलास अच्छा नहीं? क्या सुकुमारी कोमलाङ्गी बालाओंका सहवास आनन्ददायक नहीं है? फिर भी इनको भर्तृहरि, गोपीचन्द और बुद्धने ठुकरा दिया। ऐसा क्यों? इसलिये कि उन्होंने अनुभव किया कि अनन्त सुख, असीम आनन्द एवं परम शान्ति केवल-मात्र आत्मज्ञान प्राप्त होनेपर ही प्राप्त हो सकती है। यही कारण है कि सब चीजोंको तिलाञ्जलि देकर ये सब लोग आत्मज्ञान प्राप्त करनेमें लग गये।

मनमें भाव-तरङ्गे उठती और बैठती रहती हैं। विचार आते और जाते रहते हैं। अतः वैराग्य, साधना एवं मुमुक्षुत्वकी उत्कट भावना द्वारा विचारोंको, भावोंको ठीक रखना होगा। अच्छे संस्कारोंको सदा विकसित करते रहना चाहिये। उनको उत्तरोत्तर बढ़ाते रहना चाहिये। वैराग्य मानसिक दशाका नाम है। इसमें दिखानेकी कोई बात ही नहीं है। यह तो शुद्ध

मानसिक और आन्तरिक स्थिति है। ससारमें रहते हुए भी, स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति आदिमें लगे हुए रहनेपर भी मनुष्य वैराग्यके भावको अपने भीतर पल्लवित कर सकता है। गृहस्थ होते हुए भी वह पूर्ण विरक्त हो सकता है। लेकिन एक साधु, सन्यासी जो हिमाचलकी गुफामें रहता हो, जङ्गलोंमें भ्रमण करता फिरता हो, आसक्त रह सकता है। उसको अपने कमण्डलु अथवा काषाय वस्त्रके ही प्रति आसक्ति हो सकती है और तब उसको विरक्त नहीं कह सकते। शुद्ध मानसिक अनासक्ति ही वैराग्य है।

द्वितीय प्रकरण

—०—

वैराग्य क्या है ?

—०—

राजा जनक एक विस्तृत राज्यके अधीश्वर थे, किन्तु फिर भी वे वैरागी थे। इसी प्रकार राजा भगीरथ भी राजा होते हुए विरक्त तपस्वी थे। महारानी चूड़ाला एक विशाल साम्राज्यकी साम्राज्ञी थी, पर राज्यके प्रति उनको कोई मोह न था और उनके पति महाराज शिखिध्वज जो योग और तपस्या करनेके लिये जङ्गलमें चले गये थे, अपने कमण्डलु और शरीरके प्रति आसक्त थे।

वैराग्य-मनका धर्म्म

अतः ऐसी अवस्थामें किसी साधु और सन्यासी अथवा गृहस्थका जबतक चिर-सहवास न प्राप्त हो, तबतक थोड़ी देर तक बातचीत करके उसकी मनोदशा अथवा प्रकृतिके विषयमें जान लेना कठिन है। उसकी मनोदशाके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेके लिये यह आवश्यक है कि उसके साथ बहुत दिनो तक रहा जाय। साधारणतया लोग इस विषयमें बड़ी भूल कर बैठते हैं। केवल बाह्य-स्वरूप देखकर योग-भ्रममें पड़ जाते हैं। पाखण्डी व्यक्तिको लोग महात्मा समझ लिया करते हैं और फिर जब उनको चिर सहवासके बाद अपनी भूलका पता लगता है तो सिर पकड़ लेते हैं। वास्तविक वैराग्य शारीरिक नंगेपनमें नहीं है। शरीरसे नंगे साधुका मन वासनाओंसे, मनकी चञ्चलता भरी कामनाओं, उमङ्गों और तृष्णासे भी भरा हो

सकता है। कौन जानता है, किसके मनमें क्या है? अतः वासनाओंका, अहंभावका पूर्ण विनाश ही वैराग्य है।

यदि मनुष्यके भीतर विवेक नहीं है, यदि वह मुक्तिके लिये उद्योग नहीं करता, यदि वह सारा जीवन खाने-पीनेमें, आमोद-प्रमोदमें, विवाह और सम्पत्तिके सुखोंमें और वंशकी रक्षामें ही व्यतीत कर देता है तो वह पशुसे भी गया गुज़रा है। उसमें और पशुमें अन्तर ही क्या? बल्कि वह पशुओंसे भी शिक्षा ग्रहण करनेके योग्य है। पशुओंमें भी आत्म-निरोधकी मात्रा विशेष हद तक होती है, किन्तु मूढ़ मानव! तेरी बुद्धि कहाँ गयी! तू अपनेको क्यों भूल गया? तेरा आत्म-संयमका बल कहाँ चला गया? तनिक तो सोच!

विषय-भोगके दोष

विषय-भोग, दोषोंका भण्डार है। विषयोपभोगके साथ ही रोग, दोष, दुःख, व्याधि, उपद्रव, लड़ाई-झगड़े, वासना, आकांक्षा और अशान्ति आदि लगे रहते हैं। अतः सर्व-प्रथम विषय-भोगकी लालसाका ही परित्याग करना चाहिये।

पहले लोकमें कर्म्म और सन्यासकी दो निष्ठायें ही थी। श्रुति कहती है —

एते वै तमात्मानं विदित्वा ब्राह्मणाः पुत्रैषणायाश्च वित्तैषणायाश्च लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यंचरन्ति।

(बृहद् ३-५-१)

ब्राह्मण इस प्रकार आत्माका सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर, पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणाका त्याग करते और भिक्षाचरणसे जीवन व्यतीत करते हैं।

इसमें संन्यासको ही प्रधानता दी गयी है । इनमें से ईश, कठ, मुण्डक, कैवल्य, जावाल और तैत्तिरीय आदि उपनिषदोंमे भी त्यागको ही श्रेयस्कर कहा गया है । केवल दिखावटी वा ऊपरी त्याग ही त्याग नहीं है । यह वास्तविक त्याग नहीं है । वास्तविक त्याग तो वासनाओंका त्याग और अज्ञानकी ग्रन्थिको तोड़ देना ही है ।

असलमे त्याग जिस वस्तुका किया जाता है वह हे भेद-बुद्धि । लोग कहा करते हैं, "मैं अमुक व्यक्तिसे वड़ा हूं । मे उससे अधिक सच्चरित्र हू । मैंने अमुक-अमुक कार्य लोक-हिताय किये हैं । मैं शरीर हू । मैं मन हू ।"

वैराग्यका महत्व

लोगोंके अन्दर कर्तृत्वका अभिमान होता है और वे कहा करते हैं, "मैं ही अमुक कर्मका कर्त्ता हू ।" यह सब बातें साधकके लिये अनुचित हैं । जवतक इस भेद-बुद्धि और "मैं अरु मोर तोर ते माया" का त्याग नहीं किया जाता तवतक स्त्री पुत्र, घर द्वार छोड़नेसे क्या लाभ ? जिसने अपनेको इन भावोंसे विरक्त नहीं किया, जो केवल सासारिक पदार्थोंसे, भोग-विलास से अलग हो गया, उसे त्यागी नहीं कह सकते । पर यदि कोई संसारमें रहते हुए भी ससारमें अनुरक्त नहीं होता, उससे अलग-सा, खिंचा-सा रहता है, ससारके प्रति दोष-दृष्टि रखता है । अनिकेत और निरालम्ब हो रहता है—उसे ससारसे विरक्त कह सकते हैं । योगवाशिष्ठमें दिये हुए राजा शिखिध्वजके वर्णनको पढ़नेसे यह वात अच्छी तरह समझमें आसकती है । ससारके प्रति अनासक्त रहे, मोक्षकी अभिलाषाको भी छोड़ दे, यहा तक कि त्यागकी भावना-मात्रका ही त्याग कर दे, तभी मनुष्य उन्नति कर सकता है, तभी मनुष्य "सच्चिदानन्द-स्वरूप" वन सकता है । मनुष्यको यह वात सदा ध्यान

में रखनी चाहिये कि यदि शुद्ध विवेक-जन्य वैराग्य न हुआ तो उससे कोई आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती। छिद्रवाले पात्रसे जलकी तरह व्रत, जप, तप, ध्यान सभी नष्ट हो जायेंगे।

ससारसे अनासक्त होनेके लिये सर्वोत्तम उपाय केवल-मात्र वैराग्य ही है। वैराग्यसे बढ़कर अन्य कोई उपाय ही नहीं है। आसक्तिरूपी वन्धनको काटनेके लिये यह एक प्रवल अस्त्र हैं। इस अस्त्रका ही उपयोग इस भववन्धनको काटनेके लिये करना चाहिये। यदि वैराग्य वास्तविक रहा तो मनुष्य निश्चय ही अपने लक्ष्यपर पहुच जायेगा। धन, सपत्ति, मित्रता, मान, और मर्यादा सव क्षणिक हैं। यह सव शीघ्र विनष्ट हो जानेवाली चीजे हैं। इतना परित्याग निर्दयतासे करना चाहिये।

भूखा ही भोजन करता है, प्यासा ही पानी पीता है, उसी प्रकार जिसको आध्यात्मिक प्यास होती है, वह अमरत्व रूप सुधाका पान करनेके लिये उद्योग करता है।

"वेमन्ना" का जीवन अध्ययन करने योग्य है। वह आन्ध्र देशके एक ब्रह्म ज्ञानी थे। उनका पूर्व जीवन बड़ा ही कलुषित एव घृणित था, किन्तु जिस क्षण उनके अन्दर वैराग्यका भाव उदय हुआ वह एकदम वदल गये। उन्होंने कोई साधना न की, कोई तपस्या न की। वे पूर्व जन्मके योगानुष्ट महात्मा थे, अत. वैराग्यका भाव मनमें आते ही वह ज्ञानी हो गये। लोग उनकी पूजा करने लगे।

ईश्वरानुसधान अथवा ब्रह्म साक्षात्कारकी लगन "माग और पूर्ति" के नियम पर ही निर्भर करती है। वास्तविक मांग होनेपर उसकी पूर्ति निश्चित है। कहा है—आविष्कारकी जननी आवश्यकता है। यदि किसीको ब्रह्म

साक्षात्कारकी वास्तविक अभिलाषा होगी तो उसकी अभिलाषाकी पूर्ति तत्क्षण हो जायेगी।

वास्तविक सन्यासी वही है, जिसने वासना एव अहभावका परित्याग कर दिया है तथा जो अपनी वृत्तिको सात्विक बनाये रखता है।

वैराग्यके विना योगाभ्यास और आत्म-विचारका कोई मूल्य नहीं। ये निरर्थक हैं। वैराग्यकी प्राप्तिके लिये वैवाहिक जीवनके विविध बन्धनों और धर्म-सकटोंका निरन्तर सूक्ष्म विचार करना और इससे विलग हो जाना ही श्रेयस्कर है। यदि हृदयमें तीव्र वैराग्यका उदय हो तो समझना चाहिये कि वह चित्त-शुद्धिका चिन्ह है। जो चीजें किसी अवस्थामें आनन्दका कारण वनती हैं, दूसरी अवस्थामें दु खका कारण वन जाती हैं। जव चित्तकी ऐसी स्थिति हो तो समझना चाहिये कि वास्तविक वैराग्यकी भावना अकुरित हुई है।

किसी आकस्मिक उद्वेगजनक घटनाके अनन्तर जो क्षणिक विरक्ति होती है, उसको कारण वैराग्य कहते हैं। कारण वैराग्यसे आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती, ऐसी अवस्थामें मनकी वृत्ति विषय-भोगकी ओर लगी रहती है और जहा कहीं ऐसा अवसर सामने आया कि मन उधर टूट पड़ा। अत यह जान लेना चाहिये कि विवेक-बुद्धि द्वारा जिस वैराग्यकी उत्पत्ति होगी, वही वैराग्य स्थायी होगा और उसीसे आध्यात्मिक उन्नति हो सकेगी। साधकका कल्याण उसीसे होगा, उसीसे वह अपने लक्ष्यपर पहुचनेमें समर्थ होगा।

वैराग्य दो प्रकारके हैं—कारण वैराग्य और विवेक-पूर्वक वैराग्य। जिस मनुष्यके भीतर कारण वैराग्य होता है, उसका मन वड़ा चञ्चल होता है।

वह सदा उपयुक्त अवसरकी प्रतीक्षामें लगा रहता है। जहा उसको अवसर मिला वह अपनी पहली स्थितिमें आया। पहलेसे भी अधिक ज़ोरसे विषय-वासनाका उसपर आक्रमण होगा।

वैराग्यके प्रकार

किन्तु इसके विपरीत एक ऐसा व्यक्ति जिसके अन्दर विवेक-बुद्धि द्वारा, सासारिक पदार्थोंको मिथ्या समझ लेनेके कारण वैराग्य उत्पन्न होता है, सदा आध्यात्मिक पथमें उन्नति करता जाता है। उसका कभी भी पतन नहीं होता।

"दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्"

(पातञ्जल योगसूत्र—१-१५)

मनकी उस स्थितिको कि जब साधक (दृष्ट-देखे हुए)—और आनुश्रविक (सुने हुए) विषयोंसे तृष्णा रहित हो जाता है और जब वह उन विषयोंको सदा अपने वशमें ही देखता और समझता भी है, उस समय जो 'सज्ञा' उसको प्राप्त होती है, उसका नाम वैराग्य है। (योगसूत्र)

जिसका मन विभिन्न पदार्थोंकी ओर नहीं दौड़ता, जो सासारिक वस्तु-ओंमें नहीं लिपटता, जो निर्विषयक है, उसीका मन अनासक्त कहा जायेगा। जब मनुष्यका मन निर्विषयक हो जाता है, जब वह अनासक्त हो जाता है, तभी उसको ज्ञानकी प्राप्ति होती है और समाधिस्थ होनेकी क्षमता उसमें उत्पन्न होती है। सिद्धिया, विदेहावस्थाकी स्थिति, स्वर्ग-प्राप्ति की अभिलाषा मनुष्यको मोहमें डालनेवाली तृष्णा रूप ही है। मोहसे सदा बचना चाहिये। पूर्ण वैराग्यकी अवस्थाको प्राप्त हो जानेपर मनुष्यको स्वय समाधि लगने लग जाती है। परा वैराग्य ही असम्प्रज्ञात समाधिरूपी दुर्गका द्वार है।

वैराग्यकी भिन्न भिन्न अवस्थायें—

वैराग्यकी चार अवस्थायें हैं

(१) यतमानम्— मनको विषय वासनासे दूर रखनेका प्रयत्न ।

(२) व्यतिरेकम्—इस अवस्थामें मनुष्यको कुछेक पदार्थ आकृष्ट करते हैं, जिनसे वह अपनेको बचानेका उद्योग करता है। धीरे धीरे इनसे विरक्ति होती है। वैराग्य-भावना उत्तरोत्तर बढती जाती है। यदि कभी कोई पदार्थ मनको अपनी ओर करना चाहे तो उनका तत्काल परित्याग कर देना चाहिये। मनको लुभानेवाले इस विषयोपभोगके प्रति पूर्ण विरक्ति होनी चाहिये। इसी अवस्थामें मनुष्य अपने अन्दर उत्पन्न वैराग्यकी भावनाको समझता है।

(३) एकेन्द्रियम्—इन्द्रियोंपर तो इस अवस्था तक पहुचनेमें अधिकार प्राप्त हो जाता है, किन्तु मन फिर भी अनियन्त्रित रहता है। मनमें पदार्थोंके प्रति राग-द्वेषका भाव बना रहता है। अत ऐसा कहा जा सकता है कि इस अवस्थामें मन ही एक ऐसी इन्द्रिय है, जो स्वेच्छाचारी और क्रियाशील रहती है।

(४) वशीकरण— वैराग्यकी इस सर्वोत्तम स्थितिमें मनुष्यके अन्दर किसी प्रकारका मोह, लोभ आदि विकार नहीं रहता। इन्द्रिय-जन्य भोगोंके प्रति कोई आकर्षण नहीं रहता, इन्द्रिया निश्चल एव निर्विषयक हो जाती हैं, मन राग-द्वेषादिसे

मुक्त हो जाता है तथा मनुष्य स्वतन्त्र हो जाता है। इसी अवस्थामें मनुष्यको अपनी महत्ताका अनुभव होता है। उत्कट, अविचल वैराग्यके बिना कोई भी आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं।

वैराग्य तीन प्रकारका होता है—मन्द, तीव्र एव तीव्रतर। मन्द वैराग्यसे कोई भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं हो सकती।

वैराग्य रागका विपरीत रूप है। इसको निष्कामता और अनासक्ति कहते हैं। वैराग्यसे काम वासना नष्ट होती है, मनकी अन्तर्मुखवृत्ति होती है। साधकके लिये यह एक अत्यावश्यक गुण है। निर्विकल्प समाधिमें प्रवेश करनेके लिये केवल यही एक उपाय है।

विवेक जनित वैराग्य ही स्थिर एव दृढ़ होता है। यदि मनुष्यको भिन्न भिन्न दुःखों जैसे—जन्म, मरण, रोग, दुःख, चिन्ता, भय और क्रोधादिका ज्ञान हो जाय, यदि विषय-वासनाके प्रति दोष-दृष्टि उत्पन्न हो जाय, यदि ससारकी असारताका ज्ञान हो जाय तो तत्काल वैराग्यका भावोदय होगा।

विरक्त साधु एव सज्जनोंका सम्पर्क, भर्तृहरि-कृत वैराग्यशतक का स्वाध्याय वैराग्य-भावको विकसित करनेमें सहायता प्रदान कर सकते हैं। श्मशान भूमिमें किसी मृत व्यक्तिको देखकर दुःखसे उत्पन्न वैराग्य अथवा

वैराग्य प्राप्तिके साधन

किसी स्त्रीके हृदयमें सन्तानोत्पत्तिके समय उत्पन्न हुए दुःखके कारण जो वैराग्य होता है, वह मनुष्यको अध्यात्म पथकी ओर अग्रसर नहीं कर सकता। अवसर मिलनेपर मन तुरन्त सासारिक पदार्थों की ओर आकृष्ट होगा। साधक प्राय मुझसे शिकायत करते हैं कि स्वामीजी मैंने १२ वर्षों तक निरन्तर

ध्यान किया, किन्तु न जाने क्यों मुझे तनिक भी उन्नति नहीं मालूम पड़ती। उनको यह जानना चाहिये कि इसका प्रधान कारण वैराग्यकी कमी है। वैराग्य के अभावमें मन सदा सांसारिक पदार्थोंका चिन्तन किया करता है। केवल मात्र तीव्र वैराग्यसे ही आत्मज्ञानकी प्राप्ति सम्भव है।

"तत्पर पुरुषख्यातेर्गुण वैतृष्ण्यम्"

(पातञ्जल योगसूत्र—१-१६)

अर्थात् परावैराग्य उस अवस्थाको कहते हैं, जब परमपुरुषका अनुभवात्मक ज्ञान हो जानेपर सत्व, रज और तम तीनों गुणोंके प्रति भी आसक्ति नहीं रह जाती।

इससे पूर्वके सूत्रोंमें अपरावैराग्यका वर्णन किया गया है। अपरावैराग्यके अनन्तर ही परा वैराग्यका उदय होता है। अपरावैराग्यमें सत्व गुणकी प्रबलता होती है। सत्व रजस और तमससे बिल्कुल अलग नहीं होता। ऐसी अवस्थामें योगीको सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है, वह विदेह हो जाता है तथा प्रकृति-लय की अवस्थाको प्राप्त करता है। परन्तु परावैराग्य प्राप्त व्यक्ति सिद्धियोंकी परवाह नहीं करता और अन्तमें पुरुष-साक्षात्कार अथवा प्रभु दर्शन का लाभ उठाता है।

साधारण वैराग्यमें कामना व वासनाका लेशमात्र रहता है। परावैराग्यमें सभी मलिन सस्कार, वासनायें और आकाक्षायें विनष्ट हो जाती हैं। पूर्ण अस्पृहणीयता ही "परावैराग्य" है। भगवान् श्रीकृष्णने भगवद्गीतामें कहा है—

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन ।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥

(गीता—२-५९)

विषय तो निराहारी पुरुषके भी छूट जाते हैं, किन्तु उनकी चाह नहीं छूटती। किन्तु परमात्माका साक्षात्कार होनेपर उनकी चाह भी मिट जाती है।

इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिये कि मनमें वैराग्यकी भावनाका किस प्रकार उदय वा विकास हो रहा है। विश्वकी नश्वर असार वस्तुओंके प्रति मनमें घृणा होती है और इस घृणाका भाव जितना ही तीव्र होता है, उतना ही प्रबल वैराग्य मनमें उत्पन्न होता है। मनुष्यके मनमें यह भाव घर करता जाता है कि जो अल्प वा लघु है, वह पूर्ण "भूमा" को सन्तुष्ट नहीं कर सकता, परिवर्तनशील और नश्वर नाम रूपमय दृश्य जगत्‌के विषयोपभोगोंसे हृदयस्थित नित्य और अविनाशी वस्तु-तत्वकी तृप्ति वा त्रुटि पूर्ति नहीं हो सकती।

जब मनुष्यके हृदयमें ऊपरी ठाटबाटसे रहनेका प्रभाव नहीं पड़ेगा, तो वैसी रहन सहनके प्रति उसके मनमें कोई आकर्षण भी न होगा। जब यह विचार दृढ़ हो जायेगा कि मद्यमांसमें कोई आनन्द नहीं है, तब मद्यमांसके प्रति तनिक भी आकर्षण मनमें न होगा। स्त्री को यदि हम मल, मूत्र, मांस, मज्जा, रक्तका ढेर समझ लें, तो उसके प्रति कोई आकर्षण न होगा। ऐसी दशामें मद्य, मांस, स्त्री, ऊंची रहन सहनके न मिलनेसे कोई कष्ट नहीं होता। आखिरकार स्त्री के प्रति मनुष्य क्यों आकृष्ट होता है ? इसका कारण यह है कि अबोध मनुष्य यह समझ लेता है कि उससे सुख मिलेगा। किन्तु यह केवल उसका भ्रम है। यदि उसको वास्तविक विवेक और वैराग्यकी प्राप्ति हो जाये तो इन वस्तुओंसे सुखके बदले भयङ्कर दु:खकी ही प्राप्ति होगी और मनुष्य स्त्री सुख आदि विषयोंसे विरक्त हो जायगा।

सफलता तो मिलती ही है।

आसक्तिकी ग्रन्थि तोड़ दो—आसक्ति मायाकी पहली सन्तान है। आसक्तिके द्वारा ही विश्वेश्वरकी सारी लीला सुरक्षित है और वह आगेको उन्मुख हो रही है। बुद्धिमान व्यक्ति पहली वार मद्यकी केवल एक घूट ही लेता है और फिर कुसगतिमें पड़कर अन्तमें एक वड़ाभारी पियक्कड़ हो जाता है। कभी किसी नशेका व्यवहार न करनेवाला व्यक्ति भी एक वार जब सिगरेट पी लेता है, तो कालान्तरमें नशावाज़ हो जाता है। मनमें गोंद वा सरेस जैसी चिपक जानेवाली एक प्रवल वस्तु है और इसीके कारण मनमें आसक्ति उत्पन्न होती है और यह आसक्ति वड़ी प्रवल होती है। अत. इससे बचना चाहिये।

अनासक्ति

"मेरा शरीर, मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरा घर और मेरी सम्पत्ति" आदि आदि ऐसे विचारोंको कभी भी मनमें नहीं प्रवेश करने, देना चाहिये। आस-क्तिसे ही से सव दु खोंकी उत्पत्ति होती है। धीरे धीरे मनको अनुशासन और नियन्त्रणमें लानेका प्रयत्न करना चाहिये। आसक्तिका भाव जहा मनमें आए, उसको दूर करना चाहिये। एकदम अनासक्त, असङ्ग रहनेका उद्योग करना चाहिये। अनासक्ति ही ब्रह्मानन्द प्राप्त करनेका एक मात्र साधन है।

सदा क्रियाशील वने रहो, किन्तु अनासक्त रहकर। अहभावको सदा दूर रखना चाहिये। विना इसके मनुष्य अपनेको शरीर समझकर गर्तमें डाल लेता है। शुद्ध भावसे, शुद्ध मनसे किया हुआ कर्म मनुष्यको उन्नत करता है, उसको महान् वनाता है। कर्मयोगकी यही महत्ता है। धैर्य-पूर्वक कार्य करना चाहिये। प्रारम्भमें यही ठीक है। निष्काम कर्मके विना आरम्भमें

ध्यान और समाधिका कोई मूल्य नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि अनासक्त होकर निष्काम कर्म करना बहुत कठिन काम है। पर दृढ-निष्ठ एव धीर पुरुष के लिये यही सबसे सरल हो जाता है। अनन्त सुख और अमरत्व प्राप्त करनेकी अभिलाषा रखनेवालेके लिये निष्काम कर्म करना बहुत ज़रूरी है। चाहे जैसे भी हो इसको करनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह तो निश्चित है कि सबको यह कार्य करना होगा। यदि आज नहीं तो पाच सौ जन्मोंके बाद करेगा ही, करना तो ज़रूर ही पड़ेगा। दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। अत यह प्रश्न स्वभावत उठता है—तो फिर इसी जन्ममें क्यों न किया जाय ? क्यों न इसी जन्ममें आवागमनके चक्रसे मुक्ति पानेका उद्योग किया जाय ? इसीमें बुद्धिमानी है, चतुरता है। जड़कर्म दु ख और बन्धनके कारण नहीं हैं। कर्मों के प्रति लोगोंकी जो आसक्ति होती है, उसीसे दु ख और बन्धनकी उत्पत्ति होती है। कर्मयोगके रहस्यको, कर्मयोगकी विधिको जानना चाहिये और तभी ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो सकता है। कर्मों के समस्त फलको यह ज्ञानाग्नि भस्मीभूत कर देती है।

दृढ निश्चय और दृढ इच्छा शक्ति रखनी चाहिये। निवृत्ति मार्ग—सन्यासका आलम्बन करके पुन गृहस्थ बननेका विचार भी न करना चाहिये। निवृत्ति मार्गमें कूदनेके पहले अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिये। साहस

निवृत्ति मार्ग

रखना चाहिये, मनमें दृढ़ निश्चय होना चाहिये तथा जीवनका निश्चित उद्देश्य होना चाहिये। चञ्चल मन घातक होता है। जिसके अन्दर प्राणोंका मोह न हो, जो जीवनको तुच्छ समझता हो, जो सब कुछ उत्सर्ग करनेके लिये प्रस्तुत हो वही निवृत्ति-मार्ग का अनुसरण कर सकता है, वही सन्यास ग्रहण कर सकता है।

क्या आप इसके लिये शरीर और प्राण तक न्योछावर करनेको तैयार हैं? पूर्ण निश्चयके बिना कुछ भी करना भूल है। सन्यास पथको सरल, सुगम नहीं समझना चाहिये। इस मार्गमें बड़ी बड़ी कठिनाइया हैं, बड़ी बड़ी बाधायें हैं। नम्र, धीर एव कष्ट-सहिष्णु होना चाहिये। सिद्धियोंके फेरमें कभी न पड़ना चाहिये और नहीं कुण्डलिनीको शीघ्र प्रदीप्त करनेके लिये आतुर होना चाहिये। मैं सदा साधकोंकी सेवा करनेके लिये प्रस्तुत रहता हू। स्थिर-चित्त होना बहुत जरूरी है। भावावेशितासे कोई लाभ नहीं होता। कितने युवक निराश होकर लौट जाते हैं। आरम्भमें नि सन्देह बहुत कठिनाइया हैं, किन्तु अन्तमें साधकके लिये कुछ भी अप्राप्तव्य नहीं शेष रहता।

जो निवृत्ति मार्गका अनुसरण करना चाहते हैं, उनको मौनका दृढ़ अभ्यास करना चाहिये, लोगोंसे कम मिलना चाहिये तथा ससारमें रहते हुए भी मन, शरीर और इन्द्रियोंको पूरे नियन्त्रणमें रखना चाहिये। उनको कठोर से कठोर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास डालना चाहिये। इतना होनेपर ही वे तपस्वीका कठोर जीवन व्यतीत करनेमें समर्थ हो सकते हैं। ऐसे लोगोंको कठिन परिश्रम, रूखा सूखा अन्न, टाट वा भूमिपर ही सोनेका और नगे पैर ही चलनेका अभ्यास करना चाहिये। छड़ी छाता आदिका उपयोग भी नहीं करना चाहिये। भिक्षावृत्तिसे जीवन व्यतीत करनेमें सकोच नहीं करना चाहिए पर भिक्षा मांगनेकी वृत्तिसे बचे रहना चाहिए। जो बिना मागे ही अनायास प्राप्त हो जाय, वही सन्यासियोंकी भिक्षावृत्ति है। मागना भिखमंगों व मगतोंके लिए है। निवृत्ति मार्गपर चलनेवाले साधक कुछ दिनके बाद साधारणतया आलसी हो जाते हैं। उनको यह ज्ञात ही नहीं रहता कि किस प्रकार अपनी मानसिक शक्तिका उपयोग करना चाहिये। दूसरी बात यह है कि

वह कोई दैनन्दिनी भी नहीं रखते और न तो गुरुके आदेशानुसार ठीक ठीक काम ही करते हैं। आरम्भमें उनको किसी उद्वेगजनक घटनाके कारण वैराग्य हो जाता है, किन्तु आध्यात्मिक अनुभव न होनेसे वह क्रमश शिथिल पड़ जाता है और अन्तमें वह छूट जाता है। समाधिमें प्रवेश करनेके लिये गम्भीर ध्यानोपासनाकी अत्यन्त आवश्यकता है।

जिसके अन्दर मोहका भाव न होगा, जो माता, पिता, भाई, बहनसे कोई सम्बन्ध नहीं रखेगा, जो लोगोंसे मिलना जुलना, पत्र-व्यवहार करना छोड़ देगा, जो निष्कपट, सच्चा रहेगा, वही उन्नति कर सकता है। आध्यात्मिक उन्नति करनेके लिये क्रियाशीलताकी अत्यन्त आवश्यकता है। थोड़ी सिद्धियोंके प्राप्त हो जानेसे, मनकी थोड़ी निर्विषयता प्राप्त हो जानेसे, थोड़ी आध्यात्मिक सफलता प्राप्त कर लेनेसे मनुष्यको सन्तोष न कर लेना चाहिये। अभी तो यह प्रारम्भ है, न जाने कितना आगे बढ़ना है, न जाने कितनी मञ्जिलें तै करनी हैं। सन्यास ग्रहण करने वा निवृत्ति मार्गमें आनेके पहले ही यह अच्छी तरह सोच लो, पूर्ण विचारके बाद ही इस पथमें आनेकी चेष्टा करो। क्या आप इस निवृत्ति मार्गके कठोर जीवनके लिये, शरीर और प्राण सत्यकी वेदीपर सहर्ष न्योछावर करनेके लिये तैयार हैं? क्या सन्यास वा एकान्त वासके लिये आप पूर्ण रूपसे तैयार हैं? सन्यासके महत्वको भली-भाति समझ भी लिया है? यदि सन्यासकी दीक्षाके बाद ही माता पिता, स्त्री पुत्र, भाई बन्धु, सुहृद् वा मित्र रोने धोने, पश्चात्ताप वा विलाप करने लग जाय तो क्या आप निर्दयता पूर्वक उनका त्याग करनेके लिये तैयार हैं? मोह, ममता वा आसक्ति त्यागका प्रबल बल है भी वा नहीं? क्या अपने सम्बन्धियोंसे संसर्ग वा कोई भी सम्बन्ध नहीं रखनेका दृढ सङ्कल्प भी

है ? क्या पत्र-व्यवहार भी नहीं कर सकनेकी सुदृढ क्षमता आपमें आगयी है ? यदि आप इतने दृढ हों तभी निवृत्ति पथके पथिक वन सकते हैं ।

पदार्थों के प्रति आकर्षणसे मनुष्य भिन्न भिन्न प्रकारकी ग्रन्थियोंमें उलझ जाता है। वास्तविक त्याग प्रत्येक प्रकारके आकर्षण एवं वन्धनसे अलग और निर्लिप्त होनेको कहते हैं । जो सांसारिक पदार्थों में आसक्त नहीं होता जो उनके प्रति अनुरक्त नहीं होता वह अनन्त सुख एवं शान्तिका उपभोग करता है । कल्पना और अस्थिरता मनके दो विकार हैं । ये दोनों मनको सदा चञ्चल रखते हैं । अस्थिर मनमे ही कल्पनाकी प्रवल तरंगें अठखेलिया करती हुई वहती रहती हैं । जहा अस्थिरताकी समाप्ति हुई कि कल्पनाका विनाश हुआ । मन शान्त हो जाता है तथा आत्मामें विलीन हो जाता है ।

मनुष्य ससारमें अकेले आता है, और अकेले ही जाता है । वह न तो अपने साथ कुछ ले आता है न ले जाता है । न जाने क्यों लोग व्यर्थ ही असार नाम, पद, मर्यादाके पीछे पड़े रहते हैं । सदा नम्र और कोमल होना चाहिये । नम्रता हो से मनुष्य विश्व विजय कर सकता है । मनसा, वाचा, कर्मणा, सव प्रकारसे शुद्ध और पवित्र होना चाहिये । आध्यात्मिक जीवनमें प्रवेश करनेका यही एकमात्र साधन है, यही गोता एवं उपनिषदोंकी शिक्षाका सार है । विषयीके लिये ससार वड़े आनन्दकी वस्तु है । कामिनी-काञ्चनके पीछे वह उन्मत्त होकर दौड़ा करता है । उसका मन विकारों से भरा रहता है । किन्तु वह वेचारा यह नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है । किन्तु इस विश्वके माया जालको योगी समझता है । वह इसको जानता है कि संसारके प्रति विनाशका कारण वनता है । योगीके हृदय में तो आध्यात्मिक

आधिदविक एव आधिभौतिक, तापत्रय सदा प्रज्वलित रहते हैं। उसको चेन कहा? न जाने मनुष्य कितनी वार जन्म ले चुकता है। क्या एक ही माता पिता सब समय रहते हैं? कभी नहीं। अगणित जन्मोंमें—अगणित माता पिताओंने जन्म दिया है। फिर किसी विशेपके प्रति मोह क्यों? आसक्ति क्यों? विवेक बुद्धि की कमी ही कही जायगी।

क्या मनुष्यको नित्य एक ही कार्य करनेमे लज्जा नहीं आती है। मनुष्यको अपने ज्ञानका, अपने पदका और अपनी मर्यादाका इतना गर्व रहता है, किन्तु क्या एक क्षण भी उसने सोचा है कि इनसे उसके जीवनमें तृणभर भी उन्नति नहीं हुई है। आधुनिक विहार एव क्वेटाके प्रलयङ्कारी भूकम्पोंसे मनुष्यने क्या शिक्षा ली है? क्या मनुष्य उस स्थानपर नहीं पहुंचना चाहता, जहा कि वासनाओंका, तृष्णाओंका पूर्ण विनाश हो जाता है? क्या मनुष्य उस आत्मज्ञानरूपी परम तत्वको प्राप्त करना चाहता है, जिससे कि अक्षय सुख, शान्ति और अमरत्वकी प्राप्ति होती है? अब तो उसको इतना निश्चित उत्तर सोच लेना चाहिये। अब तो उसको योगसोपान पर चढ़कर अमरत्वका अमृत-पान करना चाहिये।

विवेक-जनित वैराग्य चिरस्थायी होता है। उद्वेगजनक घटनाओंके कारण जिस वैराग्यकी उत्पत्ति होती है, वह साधकको गर्तमे गिरा सकता है। इस विचारकी उत्पत्तिमात्रसे ही कि इस ससारकी अथवा स्वर्गकी सभी वस्तुए नि सार और नाशवान् हैं। मनुष्य अपने हृदयमें सासारिक पदार्थोंके प्रति अनासक्ति एव वैराग्यका भाव उत्पन्न कर सकता है। क्योंकि स्वर्गसे भी अवधि पूरी होनेपर मनुष्यको जन्म लेकर पृथ्वीपर आना पड़ता है। स्वर्गमें भी ससारकी तरह इन्द्रिय सुख भोगनेको मिलते हैं? किन्तु वे अधिक तीव्र

और कृत्रिम होते हैं। विवेकी व्यक्तिको उनसे कोई आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता। वह तो स्वर्गके भी सारे सुखोंको तिलाञ्जलि दे देता है। वह जानता है कि त्रिलोकीके सुख आत्मिक सुखके सागरमें से एक बून्दके सदृश हैं।

गीता में वैराग्य—

गीता के निम्नलिखित श्लोकोंका ध्यान करनेसे वास्तविक वैराग्यकी उत्पत्ति होगी :—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता — ५-२२)

"पदार्थों के सयोगसे उत्पन्न होनेवाले जो भोग हैं, वे दुःखके ही जनक होते हैं और वे उत्पत्ति विनाशवाले भी हैं, इसीलिये बुद्धिमान् मनुष्य उनमे प्रीति नहीं रखते।"

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम्॥

गीता—(१३-८)

इन्द्रियजन्य विषयोंमे वैराग्य, अनहकार (अहकार का नाश) और जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु और दुःखमे दोष-दृष्टि आदि ही ज्ञानके विविध अग वा रूप हैं।

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसम् स्मृतम्॥

(गीता—१८-३८)

"इन्द्रियोंका विषयोंके साथ संयोग होनेसे जो सुख होता है, वह पहले (भोगकालमें) तो अमृतके समान प्रतीत होता है, पर परिणाममें जहरके तुल्य होता है—वह राजस सुख कहा गया है।"

वैराग्य किसे नहीं कहते हैं

सामाजिक कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वोंके परित्यागको ही वैराग्य नहीं कहते। संसारसे अलग हो जाना ही वैराग्य नहीं है। श्मशान भूमि अथवा हिमाचलकी कन्दरामें रहना ही अगर वैराग्यका लक्ष्य हो, नीमकी पत्तीका भक्षण कर, तथा गो-मूत्रका पान कर रहना ही यदि वैराग्यका चिन्ह हो, जटा रखकर तथा कमण्डलु लेकर ही यदि सन्यासी बनना हो तो संसारमें सन्यासियोंके लिये स्थान भी न मिलेगा। सिर मुड़ाकर वस्त्रोंको फेंक देना ही वैराग्य नहीं है। वैराग्यसे और इन बाह्याचरणोंसे कोई सम्बन्ध नहीं। ये तो बाह्य चिन्ह मात्र हैं।

वैराग्य किसे कहते हैं

सांसारिक पदार्थों से पूर्ण मानसिक अनासक्तिको वैराग्य कहते हैं। संसारमें रहते हुए भी, सब कार्य करते हुए भी मनुष्य अपना जीवन निर्लिप्त रहकर व्यतीत कर सकता है। गृहस्थ होनेसे, लड़के बच्चोंमें रहनेसे क्या होता है। अनासक्त तो मनुष्य प्रत्येक अवस्थामें बना रह सकता है। वह आध्यात्मिक साधन इन अवस्थाओंमें भी जारी रख सकता है। जिस व्यक्तिके अन्दर मानसिक-अनासक्तिका भाव रहता है, वह उन साधुओंसे कहीं अच्छा है, जो हिमालयकी कन्दरामें रहकर तपस्यामें लीन रहते हैं, क्योंकि उसको संसारमें रहते हुए सांसारिक पदार्थों से हिलमिल कर रहना पड़ता है और उसपर भी वह निर्लिप्त बना रहता है।

मनुष्य चाहे जहाँ भी रहे, उसके साथ उसके मनकी अस्थिरता, उसके सस्कार और वासनायें लगी रहती हैं। सबसे दूर अलग एकान्त में रहते हुए भी उसके मनके विकार तो उसी तरह रहते हैं। वहा रहनेसे क्या होता है। ससारके पदार्थों का चिन्तन तो वह उमी तरह करता रहता है। पहाड़की कन्दरासे तो कोई लाभ ऐसी परिस्थितिमें होता नहीं और यदि मन निर्विषयक, अनासक्त हो तो कहीं भी कोई रहे उसके लिये वह शान्त एकान्त वनस्थलकी भाति हो जायेगा।

शान्त, विरक्त व्यक्तिका मन दूसरे ही तरहका होता है। उसके अनुभव, उसकी वातें, उसकी रहन सहन सभी भिन्न होती हैं। वह ससार अथवा सासारिक पदार्थोंसे अपनेको अलग रखनेमें कुशल है। उनके प्रति उसके मनमें कोई आकर्पण नहीं होता। वह सदा अविनाशी, एक रस रहनेवाले तत्वके ही चिन्तनाराधनमें लीन रहता है। राग द्वेप, भय चिन्ता, सुख दु:ख, मान अपमान उसके लिये सभी सम हैं। वह किसीका ख्याल नहीं करता। इस जगतके वीच वह उसी तरह अविचलित भावसे खड़ा रहता है, जैसे प्रबल झञ्झावातके बीच पर्वत शिखर। इन मनोभावोंका, इन व्यवहारोंका उसके ऊपर कोई असर ही नहीं पड़ता। वह इनको देखकर इनकी नि:सारता आदिका ज्ञान ही प्राप्त करता है। वह सुखसे प्रेम और दु:खसे द्वेप करना जानता ही नहीं। दु:खसे उसे तनिक भी डर नहीं लगता। वह जानता है कि वल्कि दु:खसे आध्यात्मिक उन्नति करनेमें सहायताही मिलती है। दु:खादिसे बढकर आत्मतत्वका ज्ञान करानेवाली कोई चीज नहीं है, यह वह धीरे धीरे दु:खोंसे सीखता जाता है।

मैं यहा पर एक चेतावनी दे देना चाहता हू। यदि साधक निरन्तर

सांसारिक प्रवृत्तिवाले लोगोंसे मिलते जुलते रहने तो वैराग्यका भाव आकर भी मिट सकता है। अत वैराग्यके भावको अत्यधिक विकसित कर लेना चाहिये। मनकी तो ऐसी प्रवृत्ति होती है कि त्यक्त वस्तुकी ओर पुन: लग जाना चाहता है। अत जहा कहीं भी मन चञ्चल हो, जहा भी वह इधर उधर भागना चाहे तुरन्त विवेक, विचार और महात्माओंकी शरण लेनी चाहिये। वैराग्यके भी दर्जे होते हैं। वास्तविक और सबसे ऊचे दर्जेके वैराग्यकी प्राप्ति तो तभी होती है, जब मनुष्य ब्रह्ममें प्रतिष्ठित हो जाता है। इस अवस्थाका वैराग्य अविचल होता है।

ससारमें रहते हुए भी मनुष्य मानसिक विरक्तिके भावको अपना सकता है। उनको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि सासारिक सुख-भोग उसको लक्ष्यसे विचलित न कर पायें। उनमें कभी भी लीन, आसक्त न होना चाहिये। यदि इस प्रकार कुछ दिनोंतक अभ्यास किया जाय तो आध्यात्मिक सोपानपर मनुष्य क्रमश चढ़ता जायेगा एव अन्ततोगत्वा लक्ष्यपर पहुंच जायेगा। उस समय उसका मन शान्त, निश्चल हो जायेगा। त्रिलोकमें अनासक्त व्यक्तिसे सुखी, शान्त और सम्पन्न कोई और व्यक्ति नहीं होता। उससे बढ़कर शक्तिशाली ही कौन है, जिसको ब्रह्मकी माया भी नहीं लुभा सकती।

डाक्टरोंको, चिकित्सकोंको तो वैराग्य-भावको आशवित करनेके लिये बड़ा अच्छा क्षेत्र है। निरन्तर उनके सामने ऐसे रोगी आते रहते हैं, जिनके

सर्वोत्तम शिक्षण

रोग असाध्य होते हैं। इस प्रकार मायाके खिलवाड़ोंको देखनेका तो उन्हें सदा ही अवसर मिला करता है। वे तो और भी अधिक जीवन की अनित्यता एव असारताका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

जेलोंके अधिकारी-वर्ग के लिये भी सबसे सुन्दर अवसर वैराग्य प्राप्त

करनेका रहता है। यदि उनकी आखें हों, यदि वे सत्य और मुक्तिको जानना चाहते हों तो अपराधियोंको फासीके समय वे भलीभाति देख सकते हैं कि इस जीवनका कुछ ठिकाना नहीं।

मनुष्यकी मानसिक स्थिति निःसन्देह विचित्र है। सन्यासीका जीवन ससारमें सर्वोत्तम है। सच्चा सन्यासी त्रिलोकका स्वामी है। साधक भी ससारके सब लोगोंसे बढ़कर है। भगवान् श्रीकृष्णने कहा है—"योगको सीखनेकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति भी ब्रह्मको प्राप्त कर लेता है।"

जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते।

गीता—६-४४।

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि जिन लोगोंके अच्छे आध्यात्मिक सस्कार हैं, उनके उज्ज्वल सस्कार इसी जीवनमें प्रकट होना चाहते हैं। किन्तु उन सस्कारोंको पल्लवित और विकसित करनेकी ज़रूरत है। उन्हें ससारसे, सासारिक पदार्थोंसे सदा सतर्क रहना चाहिये। आध्यात्मिक साधनोंकी अभिरुचि रखनेवाला या उनके अनुसार चलनेवाला व्यक्ति ससारात्मक प्रवृत्तिवाले लोगोंसे जितना ही दूर रहे उतना ही अच्छा। सदा सत्सङ्ग करना चाहिये। सासारिक लोगोंके सहवासको विषवत् परित्यक्त करना चाहिये। ऐसे लोगोंका साथ छोड़ देनेसे मनुष्यके मनोविकार उसको गिरा नहीं सकते। ब्रह्ममें प्रतिष्ठित किसी गुरुके साथ रहकर उसके आदेशानुसार क्रिया करके वैराग्य-भावको ग्रहणकर उत्तरोत्तर इतना बढाना चाहिये कि अन्तमें उनका भाव वास्तविक सन्यासमें परिवर्तित हो जाय।

चेतावनी

मेरे पास जितने साधक आरम्भमें वैराग्य और उत्साहके भाव लेकर आते हैं, किन्तु ऐसा देखा जाता है कि अधिक समय तक उनका उत्साह नहीं रहता और न तो साधनकी क्रिया ही वे पूरी कर सकते हैं। ज्यों ही थोड़ी सी कठिनाइयां सम्मुख आयीं कि उन्होंने पैर पीछे हटाने शुरू किये। यह बड़ी ही शोचनीय स्थिति है। पहले ही सोच समझकर कार्यारम्भ करना चाहिये। पहले दृढ़ निश्चय करले तो कदम आगे बढ़ाए। जब सन्यास लिया तो उसमें तबतक लगा रहे जबतक साधनका फल न प्राप्त हो जाय अथवा मनुष्य अपने लक्ष्यपर न पहुंच जाय।

यदि इनमेंसे किसी की अर्थात् लगन और दृढ़ निश्चय की कमी हो तो कम से कम तीन वर्ष तक सन्यास न ले। इस अवधिमें घर पर ही रहकर आसन, प्राणायाम, उपासना, ध्यान आदि आध्यात्मिक साधन करे। ध्यानमें विलीन हो जानेकी चेष्टा करे। निःस्वार्थ सेवा करनी चाहिये। इनसे चित्त-शुद्धि प्राप्त होगी। ब्रह्मचर्यका पालन तो अनिवार्य है। धूम्रपान, नशा आदि का सेवन जैसी जो जो भी बुरी आदतें हों उनसे बचना चाहिये। सद्गुणोंका विकास करना चाहिये। मानसिक विचार-धारा को परिवर्तित करना चाहिये। इसके बाद सन्यासके लिये आना चाहिये और यहां आकर कठोर क्रियाशील जीवन व्यतीत करनेके लिये प्रस्तुत होना चाहिये।

कितने साधक उतावले होकर यहां आते हैं। किन्तु वैराग्यकी कमीके कारण कुछ ही दिनोंमें उनका मन उचट जाता है और वे घर वापस लौट जाते हैं। यह अत्यन्त अनुचित है। इसीलिये मैं चेतावनी देता हूं कि सोच समझकर ही कुछ करना चाहिये।

कितने साधकोंको यहां आकर भी लिखना, पढ़ना, देखभाल, पूजाके लिये फूलोंका चयन, पुस्तकालयमें पुस्तकोंकी देखभाल आदि कार्य ही करनेमें आनन्द आता है। आर्तजनोंकी सेवा, रोगियोंकी शुश्रूषा, झाड़ू लगाना, सफाई करना, पानी लाना आदि कार्य उनसे नहीं होते। ये काय वे करना ही नहीं चाहते। इनको वे तुच्छ समझते हैं। ऐसे लोग अभी तक बाबू ही ही बने रहते हैं। उन्होंने निष्काम कर्मकी महत्ताको ही नहीं समझा है।

कितने लोगोंके अन्दर थोड़ा थोड़ा आध्यात्मिक भाव और वैराग्य होता है। इन दोनोंको खूब विकसित करना चाहिये। त्याग-पथ पर अग्रसर होनेके लिये साधारण वैराग्यसे कोई सहायता नहीं मिलेगी। कुछ दिनोंतक घरबार छोड़कर एकान्त, शान्त स्थानमें रहना चाहिये। आत्म-निरीक्षण करे, जिज्ञासु बने, मोह, माया, वासना, आसक्तिका भाव दूर रखे। सदा इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि मन विषयोंकी ओर तो नहीं दौड़ता। पहले निश्चय कर लेना चाहिये कि विषय-भोगकी अभिलाषा, सम्बन्धियोंके प्रति आसक्ति और सुखोपभोगकी लालसा मिटेगी या नहीं। जबतक कि संसारसे सर्वथा विरक्त हो जानेका भाव मनमें न आ जाय तबतक यहा नहीं आना चाहिये। उचित साधनाके बाद आनेसे मैं लोगोंको योगियोंका योगी, योगेश्वर बना सकता हूं। कितने लोगोंने एक दो वर्षमें ही अत्यधिक आध्यात्मिक उन्नति कर ली है। और लोग फिर भला क्यों नहीं कर सकते। सबसे बड़ी आवश्यक बात जो है, वह यही है कि अपने आध्यात्मिक गुरुके आदेशका अक्षरशः पालन करे। आध्यात्मिक जीवनमें सफलता प्राप्त करनेका सर्वोत्तम उपाय यही है।

तृतीय प्रकरण

—०—

सांसारिक दुःख

—०—

मनुष्य अपने उन्हीं कर्मोंकी रोज़ रोज़ आवृत्ति करता है, रोज़ रोज़ उन्हीं विषय-सुखों में लिपटा रहता है। पहलेकी ही चीजें पुन पुन आया करती हैं; वही वस्त्र, वही अलङ्कार, वही भोग और फिर भी मनुष्य घबराता नहीं।

अज्ञान-दुःखका भण्डार

बुद्धिमान लोग भी नहीं ऊबते। छोटे छोटे अज्ञानी बालकों को एक ही प्रकारकी मिठाई में प्रतिदिन आनन्द मिलता है। वह उनसे ऊबते नहीं, घबराते नहीं। क्यों? क्योंकि थोड़ी देरके लिये उनका मुंह मीठा हो जाता है। इसी तरह मनुष्य भी क्षणिक सुख देनेवाले विषय-भोगोंमें लीन होकर सत्पथसे विचलित हो जाता है। वह घबराता नहीं। सृष्टि-चक्र तो चला ही करता है। रातके बाद दिन, मास, वर्ष और युग पुन पुन आते ही रहते हैं। नया कुछ भी नहीं रहता। धन-सम्पत्तिसे मन विचलित हो जाता, तरह तरहकी कल्पनायें मनमें उठती हैं, किन्तु मनको शान्ति और सुखका लेश भी नहीं मिलता। कूपमें उगा हुआ, खिला हुआ, सर्पसे घिरा हुआ सुन्दर सुगन्धित पुष्प मनुष्यके लिये निरर्थक होता है। ठीक उसी भांति धन-सम्पत्ति भी। बल्कि इनसे मनुष्यका पतन ही होता है।

पत्तेपर जमा हुआ जलकण पत्तेके उलट दिये जानेपर विनष्ट हो जाता है। पत्ता सूख जाता है। उसपर जलकणका नाम निशान तक नहीं रहता। ठीक उसी भांति इस जीवनका रहस्य है। इसमें प्राण है, किन्तु एकाएक यह निकल जाता है और फिर शरीरसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। प्राण बिना जीवन नहीं, जैसे जल बिना बादल या घी बिना दीपक। वास्तवमें जीवन और मरण तो इस विश्वरूपी रङ्गमञ्च पर दो दृश्य हैं। नहीं तो कहा कोई आता है, कहा जाता है। जिन लोगोंने अपनेको मुक्त कर लिया है, उनके जीवन धन्य हैं। जीवनसे बढ़कर बुरी चीज़ और कोई है ही नहीं, जो स्वभावत विनाशी और विषय सुखकी ओर दौड़नेवाली है।

जीवन मरण कोई वस्तु नहीं

वासनारूपी अग्निने मनुष्यको जलाकर भस्म कर दिया है। अमृतसागरमें स्नान करनेपर भी मनुष्यमें आधुनिक समयमें शीतलता नहीं आ सकती। यह वासना ही है, जिससे मनुष्यको पुनर्जन्म आदि वेदनाओंको सहन करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है। यह मानव शरीर जिसमें मल, मूत्र, मास, मज्जा भरे हुए हैं, जो सदा परिवर्तन-शील है, जो विनाशी है, केवल दु ख भोगनेके लिये ही बना है। जो शरीर हड्डी, मांस, रक्तसे बना है, जो नाशवान है, जिसकी वृद्धि और ह्रास होता है, जो धनी निर्धन सबमें एकसा है, क्या सुख दे सकता है? उससे कौन-सा सुख भोगा ही जा सकता है?

वासना

मानव-शरीरको क्या क्या कष्ट हैं। एक ओर तो बिच्छू, दूसरी ओर साप। तीसरी ओर मक्खी, मच्छड़, खटमल आदि। गर्मीमें ऊपरसे सिरपर सूर्यकी जलती किरणें कष्ट देती हैं और जाड़ेमें सर्द हवाएँ। अन्य प्रकारकी

भयङ्कर असाध्य बीमारियां कहीं एक ओर सताती हैं तो

त्रयताप

सम्बन्धियोंकी मृत्युरूपी विभीषिका दूसरी ओर और इतना ही क्यों ? आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधि-भौतिक इन तीनों तापोंका भी कुछ ठिकाना है ? भय, भ्रम, शोक, सन्ताप, चञ्चलता, उद्विग्नता अलग मारे डालते हैं। प्रतिक्षण मनुष्यको वासना, क्रोध, घृणा, द्वेष, शोक, दुःखसे परेशानी उठानी पड़ती है। इतनेपर भी मनुष्य इन मायामय क्षणभंगुर इन्द्रिय-सुख देनेवाले विश्वके पदार्थों से अलग होनेकी इच्छा नहीं करता। विषय-भोगकी हद हो गयी ! लोग गर्वसे सिर ऊंचा करके कहते हैं, "मैं बड़ा शक्तिशाली हूं। मैं बड़ा बुद्धिमान हूं। मैं अमुक कार्य कर सकता हूं। मैं ही सब कुछ हूं। नहीं कहीं ईश्वर है न कहीं कुछ।" लोग मदमें भरे इठलाते हुए चलते हैं, किन्तु जहां कोई तकलीफ हुई कि लोग लगे "नारायण ! मेरी रक्षा करो, नाथ ! मुझे बचाओ ! मुझे दुःखसे छुड़ाओ," कहकर विलाप करने। सिरके बाल सफेद होते ही लोग भिन्न भिन्न प्रकारके खिजाब आविष्कृत करते हैं। लोग शरीरको पुनः स्फूर्तियुक्त बनानेके लिये अनेक तरहके उपचार करते हैं, बन्दर-ग्रन्थि लगवाते हैं। दांतोंके टूटने पर लोग नकली दांत पत्थर आदिके बनाकर लगाते हैं। जीवित रहनेकी तथा भोग करनेकी इच्छा कभी छूटती ही नहीं। मूढ़ मानव ! हतबुद्धि !

गम्भीर चिन्तन करना चाहिये। विचार करना चाहिये। सत्सङ्ग करना चाहिये। निःस्वार्थ सेवा करनी चाहिये। मोक्ष-प्राप्ति के चार उपायोंका अव-लम्बन करना चाहिये। भगवद्गीता, योगवाशिष्ट तथा श्रीशङ्कर प्रणीत विवेक चूडामणिका स्वाध्याय करना चाहिये। जहां सन्देह हो वहां बड़े बड़े योग्य सन्या-सियोंके पास जाकर अपनी शङ्काओंका निवारण कराना चाहिये। श्रवण, मनन

एव निदिध्यासनमें लीन रहना चाहिये। अज्ञानके पर्देको फाड़कर आत्मस्वरूप को पहिचानना चाहिये। आत्मस्वरूपमें प्रतिष्ठित होना चाहिये। बृहदारण्य-कोपनिषद्में लिखा है— "**आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो, निदिध्यासितव्यो।**" अर्थात् आत्मा ही एक ऐसी वस्तु है, जिसको देखना, सुनना, मनन करना और विचारना चाहिये।

आदर सम्मान, मान मर्यादा, नाम यशका परित्याग करना चाहिये। ये बिल्कुल निरर्थक हैं। इनसे अनन्त सुख और शान्तिकी प्राप्ति कदापि सम्भव नहीं। इनसे केवल दम्भकी वृद्धि होगी। ये सब मनको चञ्चल करनेवाले हैं। इनसे दु.ख, अशान्ति और चिन्ताका सचार होगा। यही कारण है कि राजा भर्तृहरि, राजा गोपीचन्द, एव भगवान् बुद्धने राज-पाट, सुख-ऐश्वर्य सबका परित्याग कर दिया। उन्होंने इनको तृणवत् समझा।

जीवन मिथ्या है—

मनुष्यके मरनेके बाद उसके साथ उसके सत्कर्म या दुःष्कर्म ही जाते हैं और उन्हीं कर्मों के अनुसार ईश्वर लोगोंको फलाफल दिया करता है।

बाह्य पदार्थोंके प्रति आकर्षण बन्द होनेपर भी मनमें उनके लिये चाह, वासना बनी ही रहती है। इसीको तृष्णा कहते हैं। इसीलिये गीतामें कहा है—भोग्य पदार्थ नहीं किन्तु लोगोंके मनमें उन पदार्थों के प्रति जो तृष्णा होती है, जो वासना होती है, वह लोगोंको सयमित जीवन व्यतीत करनेसे, नियमित रहनेसे अलग हटाकर दूर फेंक देती है। किन्तु उसपर मनत्वका साक्षात्कार हो जानेपर वासना और तृष्णा भी विनष्ट हो जाती हैं।

प्रत्येक प्राणी अगणित बार जन्म लेता है। क्या प्रत्येक जन्ममें उसके वही माता पिता सगे सम्बन्धी रहते हैं? कदापि नहीं। और फिर भी लोग न

जाने क्यों मिथ्या सम्बन्धोंके पीछे इतना पड़ा करते हैं। अज्ञान और विवेक-बुद्धिकी कमी ही इसका कारण है। कितनी मूढ़ता है जगमें।

न जाने क्यों उन्हीं कामोंको नित्यप्रति करते करते लोग ऊबते भी नहीं। लोग अपने धन सम्पत्ति, मान मर्यादाके पीछे मदान्ध होकर पड़े रहते हैं, किन्तु यह नहीं सोचते कि इनसे तनिक भी कल्याण नहीं होता। भला इनसे क्या आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है। लोगोंको कमसे कम दैनिक जीवन में घटनेवाली प्रलयकारी घटनाओंसे तो सीख लेनी चाहिये। बिहार और क्वेटाके भूकम्पोंसे तो उनकी आखें खुलनी चाहियें। मनुष्यको अवश्य ही उस परमस्थान तक पहुचनेका उद्योग करना चाहिये, जहा पहुचनेसे तृष्णाका नाश हो जाता है। जो जीवनका परमोद्देश्य है, जिसके प्राप्त करलेनेपर अक्षय अनन्त सुख, शान्ति और अमरत्वकी प्राप्ति होती है।

बिहारके भूकम्पमें एक कोट्याधीशको अपनी और अपनेपरिवार की भूखसे प्राणरक्षा करनेके लिये नौ रुपयोंकी भीख मागनी पड़ी। एक पंडितने अपनी पुस्तकोंको बेचकर पचीस हज़ार रुपये इकट्ठे किये थे, किन्तु उनका सारा रुपया छातीके एक रोगके लिये दवा करानेमें लग गया और फिर भी जब वे अच्छे न हुए तो उनको घर द्वार छोड़कर सन्यास लेना पड़ा।

जीवन अस्थिर है, मिथ्या है। शरीरके ऊपर भिन्न भिन्न प्रकारके अगणित रोगोंका आक्रमण होता है। इसका कुछ ठिकाना नहीं और फिर भी लोग इस जीवनसे लिपटे रहते हैं। मनसे वे दूर जा पड़ते हैं और फिर इधर उधर भटककर अपना सर्वनाश कर लेते हैं। मनको शुद्ध करके, ध्यान करके चित्तकी बाह्य वृत्तियोंको रोक करके मनुष्यको आत्मज्ञानरूपी अमरत्वको प्राप्त करना चाहिये, जिससे उसको सुख और शान्तिकी प्राप्ति हो।

ससारके अपार दु खोंसे बचनेका यही एक मार्ग है। लोगोंको शीघ्रातिशीघ्र आध्यात्मिक साधन आरम्भ कर देना चाहिये। वृद्धत्वके सारे चिन्ह शरीरमें प्रकट हो रहे हैं, बाल पक गये, दात टूट गये, इन्द्रियोंमें शक्ति नहीं रही। फिर भी देर क्यों? वृद्धावस्थामें कुछ भी नहीं हो सकता। अवस्था रहने ही पर जप, तप और ध्यानका अभ्यास आरम्भ कर देना चाहिये। पीछे कुछ हो सकना कठिन है।

अचञ्चल, शान्त मनकी प्राप्ति बहुत कठिन कार्य है। फिर भी अभ्याससे क्या नहीं होता! मानव प्राणीका मन तो ऐसा होता है, जो योग, ध्यान आदिकी ओर बढ़नेवाला है।

भगवान् बुद्धके अन्दर विवेक-बुद्धि लड़कपनसे ही थी। ससारके अनित्य, नश्वर, मिथ्या पदार्थोंके प्रति उनके मनमें आरम्भसे ही वैराग्य था। उनके अन्दर ससारके रोग, दु ख, शोक, सन्तापके प्रति पहलेसे ही असन्तोष और अशान्ति थी। हरएक आदमी बुद्ध बन सकता है। सबके सामने तो वही परिस्थितिया हैं।

दिनके चौबीस घण्टे मनुष्य व्यर्थमें गँवा देता है। आठ घण्टे तो सोकर बिता देता है और बाकी समय लोगोंको ठगकर, झूठ बोलकर, असत्य कपटका व्यवहार कर, धन जोड़नेमें। यदि आध घण्टे तक भी भगवान्का नाम न लिया जायगा, यदि थोड़ी देरतक भी भगवत् चिन्तन और आराधन न किया जायगा तो कैसे आध्यात्मिक उन्नति हो सकती है, कैसे सुख, शान्ति और अमरत्वकी प्राप्ति हो सकती है। अत मनुष्यको अब भी तो चेतना चाहिये।

भगवान् बुद्ध कहते हैं, "आखिरकार जीवन दु खमय ही है।" पातञ्जलिने भी योगसूत्रोंमें यही बात कही है—"सर्वम् दुःखम् विवेकिनः"

जीवन दुःखमय है

अर्थात् विवेकी व्यक्तिको ही दुःख सताते हैं। यह निराशावादिताका चिन्ह नहीं है। यह तो आशावादिता का एक प्रधान अङ्ग है, क्योंकि यह मनमें वैराग्य-भाव को उत्पन्न करता है, जिससे मनुष्य ईश्वर-साक्षात्कार करनेके लिये प्रयत्नशील हो सकता है।

मासलुब्धो यथा मत्स्यो लोह शंकु न पश्यति।
सुखलुब्धस्तथा देही यमबन्धम् न पश्यति॥

"जिस प्रकार मास खानेकी इच्छा रखनेवाली मछली केंचुएके नीचे लगे हुए कांटेको, जिसका काम ही उसको फँसाना है, नहीं देखती है। उसी प्रकार विषयोंमें सुख ढूँढनेवाला व्यक्ति उसके अवश्यंभावी परिणाम मृत्युको नहीं देखता।"

इन्द्रिय निरोध—

तृष्णाका अर्थ होता है इन्द्रियोंकी अभिरुचिके अनुसार दौड़ना। निरन्तर किसी विषयको भोग करते रहनेसे उस विषयके प्रति चाह और बलवती होती जाती है। इसीको तृष्णा कहते हैं।

आक्सफोर्ड अथवा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयोंमें पढ़कर बड़ी बड़ी डिग्रियां प्राप्त कर लेना उतना कठिन नहीं है, जितना कि तृष्णाको कम करना। यही कारण है कि मुनि वसिष्टने रामसे कहा है, "हिमाचलको उखाड़ फेंका जा सकता है, सारे समुद्रोंका जल एक बारमें पिया जा सकता है, अग्नि-पिण्डको निगला जा सकता है, किन्तु तृष्णाका सर्वथा उन्मूलन करना कठिन है। वासनासे अनेक प्रकारके दुःख और कष्ट होते हैं। यही वासना ससारकी उत्पत्तिका कारण है। इसीमें ससाररूपी बीज सन्निहित रहता है।

सांसारिक व्यक्ति सदा दुःखमें मग्न रहा करता है। वह सदा ही कुछ धन, कुछ सपत्ति, कुछ शक्ति, मान मर्यादा, गौरव गरिमा प्राप्त करनेकी चिन्तामें पड़ा रहता है और इतना ही क्यों ? इनको पा लेनेपर भी चिन्ता उसका पिण्ड नहीं छोड़ती। वह सोचता रहता है कि कहीं ये चीज़ें उससे छूट न जायें, कहीं उसके हाथ से निकल न जायें। रुपये पैदा करनेमें भी दुःख है और उसको रखनेमें भी, और यदि घट जाय या हर जाय तब तो दुःखका फिर कहना ही क्या ! मनुष्य जैसे पागल, हतबुद्धि हो जाता है। अतः साधारण धनकी अभिलाषा, प्रयत्न छोड़कर आत्म सुखरूपी धन प्राप्त करनेका उद्योग करना चाहिये, जिसमें दुःखका लेश भी नहीं, सुख ही सुख है।

प्रकाश और अन्धकार साथ साथ नहीं रह सकते। विषय-सुख और आत्म-सुख का कोई साथ नहीं। एकके रहनेपर दूसरा टिक ही नहीं सकता। इसके विरुद्ध सांसारिक व्यक्ति विषय सुख और आत्म-सुख दोनोंका एक साथ उपभोग करना चाहते हैं, जो कि बिल्कुल असम्भव है। वे न तो विषय-भोग को ही छोड़ना चाहते हैं, न वैराग्यके भावको ही विकसित करना चाहते हैं, केवल निरर्थक बातें किया करते हैं। भला इससे कहीं आत्मानन्दकी प्राप्ति हो सकती है।

सभी लोग यह जानते हैं कि मैं किसी समय भी मर सकता हूं और फिर भी लोग सोचते हैं कि मैं सदा जीवित रहूंगा। कितनी बड़ी विडम्बना है। मायाजालमें मृत्युके समय तक अपनेको फँसाकर रखना कितनी बड़ी मूर्खता है। जो व्यक्ति संसार अथवा सांसारिक पदार्थोंके प्रति अपनेको अनुरक्त रखता है, वह तनिक भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकता।

युवक अविवाहित जिसके सिरपर विषय-वासना का भूत सवार रहता है-

सोचता है कि अविवाहित रहनेमें ही उसको दुःख है। किन्तु एक गृहस्थ जिसको संसारके अनुभव प्राप्त हैं, जो सब कुछ जान चुका रहता है, वह समझता है कि परिवार उसके पथमें कितना बड़ा रोड़ा है, जो उसे आध्यात्मिक उन्नति करनेसे सदा रोकता रहता है। कितना महान् अन्तर है दोनोंमें, युवकको गृहस्थसे शिक्षा लेनी चाहिये।

धन, संपत्ति, पुत्र, कलत्रादिका परित्याग तो सरल भी है, किन्तु यश और अधिकारका त्याग बड़ा कठिन है। प्रतिष्ठाका त्याग ही त्याग है। यह एक बड़ा अवरोधक है। इसके बिना ब्रह्म-साक्षात्कार बहुत कठिन है, वरन् असम्भव है और इसीका परित्याग मनुष्यको उन्नतिके

यशोलिप्सा

शिखरसे लाकर नीचे गर्तमें डाल देता है। इसके रहते हुए तो कोई आध्यात्मिक उन्नति सम्भव ही नहीं है। जो साधक मान सम्मानका भूखा हो वह कर ही क्या सकता है? जहां उसने थोड़ी बहुत भी शुद्धि और स्वच्छता प्राप्त की कि लोग उसके पास आना जाना शुरू कर देते हैं, उसके चरणोंमें शीश झुकाने लग जाते हैं और वह फिर प्रसन्नतासे फूलकर मदान्ध हो जाता है।

वह अपनेको एक महात्मा समझने लगता है, अपने प्रशंसकों एवं पृष्ठ-पोषकोंका दास हो जाता है और फिर धीरे धीरे गिरने लग जाता है। अज्ञान, मदके कारण वह अपने पतनको नहीं देख पाता है। किन्तु उसको यह जानना चाहिये कि जिस क्षण वह गृहस्थोंसे, पारिवारिक जनोंसे खुलकर मिलना आरम्भ करता है, उसी क्षण उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है और जो भी कुछ उसकी उन्नति आठ, दस वर्षकी कठिन तपस्याके बाद हुई रहती है, उसको वह खो देता है और आगे उसकी शक्ति इतनी क्षीण हो जाती है

कि वह सर्वसाधारणको अपने प्रभावमें रखनेके योग्य नहीं रह जाता और उसके प्रशसक और साथी भी उसका साथ छोड़कर अलग भाग जाते हैं, क्योंकि उसका सहवास अब उन लोगोंको कोई आध्यात्मिक सुख और शान्ति नहीं प्रदान करता।

लोग समझते हैं कि महात्माको अनेक प्रकारकी सिद्धियां प्राप्त हैं और उसकी कृपासे लोग धन, पुत्र, भिन्न भिन्न प्रकारकी जड़ी बूटिया जिनसे कि शारीरिक शक्ति और आरोग्य प्राप्त होगा, हासिल कर सकेंगे। ससारका यह नियम ही है कि लोग किसी साधु सन्यासीके पास स्वार्थोद्देश्य लेकर ही जाते हैं। ऐसे स्वार्थी भ्रष्ट व्यक्तियोंका सहवास साधकको भी भ्रष्ट कर देता है,-उसके वैराग्य और विवेकको नष्ट कर देता है। उसके मनमें आसक्ति और वासनाकी प्रदीप्ति होती है। अतः ऐसे स्वार्थी व्यक्तियोंसे साधकोंको सदा बचना चाहिये, सदा दूर रहना चाहिये। साधन क्रियाका ज्ञान किसी भी दूसरे व्यक्तिको नहीं होने देना चाहिये और न तो अनेक प्रकारकी प्राप्त सिद्धियोंका ही प्रदर्शन करना चाहिये। सदा नम्र और आडम्बर-रहित होना चाहिये। गृहस्थियोंसे कभी भी मूल्यवान भेंट न लेनी चाहिये। ऐसी भेंट देनेवाले लोगोंकी भावनाओंका, विचारोंका असर पड़ा करता है। अपनेको कभी भी दूसरोंसे महान् नहीं समझना चाहिये और न तो दूसरोंको घृणाकी दृष्टिसे ही देखना चाहिये। सबके प्रति आदर और सम्मानका भाव रखना ही श्रेयस्कर है। बिना इसके दूसरे भी साधकके प्रति आदर सम्मानका भाव नहीं रख सकते। आदर, मान, मर्यादा, अधिकार, गौरव इनको विषवत् समझकर इनका परित्याग करना चाहिये। अपमान, अनादर, अश्रद्धाको अमृतोपम समझना चाहिये। इस प्रकारका व्यवहार रखनेपर ही मनुष्य अपने लक्ष्य तक

सुगमतया पहुच सकता है।

साधकोंको इस बातसे सावधान रहना चाहिये कि आश्रमोंके निर्माणसे तथा शिष्योंकी सख्या-वृद्धिसे उनका अमङ्गल होता है। ईश्वर-साक्षात्कार के पथमें ये सब वस्तुए एक बड़े भारी रोड़ेका कार्य करती हैं। ऐसी दशामें साधक स्वय एक गृहस्थ बन जाता है। उसके भीतर

दुःख क्यों ?

'अहभाव' प्रदीप्त होता है। वह आश्रम एव शिष्योंके प्रति आसक्ति रखने लगता है। आश्रमको चलानेके लिये आश्रमके और पदार्थों की ठीक ठीक व्यवस्था करनेके लिये उसको नाना प्रकारके कार्य करने पड़ते हैं और इस प्रकार वह चिन्ता-ओंका, कष्टोंका शिकार बन जाता है। उसके अन्दरपर—निर्भरता आ जाती है। आश्रम और शिष्य ही उसके लिये सब कुछ हो जाते हैं। ईश्वरका ध्यान उससे कोसों दूर चला जाता है।

और इन आश्रमोंकी भी हालत बहुत बुरी होती है। जबतक इनके प्रधान जीवित रहते हैं, तबतक तो इनकी व्यवस्था बड़ी अच्छी होती है। किन्तु इन गुरुओंके मरने पर इनके सकीर्ण हृदय स्वार्थी शिष्यगण आपसमें लड़ाई झगड़ा करते हैं, मुकदमे लड़ते हैं और मारपीट तक कर देते हैं। नित्यके उदाहरणसे शिक्षा ली जा सकती है। आश्रम क्या होता है, एक लड़ाई झगड़ेका केन्द्र बन जाता है। आश्रमवासियोंको रुपयोंकी चिन्ता नित्य सताती रहती है। धनियोंसे दिनरात प्रार्थनायें करनी पड़ती हैं, सदा अपील निकालनी पड़ती है। भला जिसके भीतर ये बातें हों उसके भीतर ईश्वरका विचार टिक सकता है? बहुतसे आश्रमवासी यह कह सकते हैं कि हमारे यहा आश्रमके द्वारा कितने जनहितके कार्य किये जाते हैं, नित्य धार्मिक

शिक्षायें दी जाती हैं, निर्धनोंको खिलाया जाता है, गरीबोंकी सेवा की जाती है, आध्यात्मिक उपदेश दिये जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि किसी जीवन्मुक्त योगी द्वारा बनाया हुआ आश्रम अपनी एक अलग महत्ता रखता है। उसके अणुपरमाणुमें एक अपनी शक्ति रहती है, एक चेतनता-सी रहती है। इनसे हजारों आदमियोंकी आध्यात्मिक उन्नति होती है, ऐसे आश्रमोंकी संसार भरमें आवश्यकता है, इनसे देशकी बहुत बड़ी उन्नति हो सकती है, किन्तु ऐसे आश्रम जिनके सचालक ऐसे आदर्श व्यक्ति हों अत्यन्त ही अल्प मात्रामें हैं। अधिकतर आश्रमोंका ध्येय जिस प्रकार भी सम्भव हो रुपये एकत्र करना होता है। इन रुपयोंमें से कुछ ही सन्मार्ग में व्यय होता है, शेष आश्रमवासियोंके आराम, सुखके लिय व्यय होता है।

आश्रमोंके प्रतिष्ठापक कुछ दिनोंमें भक्ति और पूजाके गुलाम बन जाते हैं। मायाका तो कार्य भिन्न भिन्न रूपोंमें चला ही करता है। वह इन साधकोंकी मनोवृत्ति कलुषित कर देती है। वह चाहते हैं कि लोग उनका चरणामृत पान करें। परन्तु भला जिसके भीतर अवतार बनकर पूजे जानेका भाव हो, जनताकी सेवा कर सकता है? कदापि नहीं। ऐसे लोगोंके साथ रहनेवाले बड़े छोटे दिलके हुआ करते हैं। यह लोग आपसमें लड़ाई झगड़ा करके आश्रमकी शान्तिको भङ्ग किया करते हैं और ऐसी हालतमें वे आश्रम जिनमें नीरवता और सुव्यवस्थाका ही साम्राज्य होना चाहिये, अनाचार एव कलहके अड्डे बन जाते हैं। फिर तो बाहरी लोग जो आश्रममें शान्ति प्राप्तिकी कामनासे हो जाते हैं, कैसे अपनी इच्छा पूरी कर सकते हैं?

आश्रमोंके प्रतिष्ठापकोंको रोज़ बाहरी भिक्षापर रहना चाहिये। हृषीकेश के बाबा काली कमलीवालेकी तरह सरल, सादा और आत्मत्यागका जीवन

उनको व्यतीत करना चाहिये। वह आश्रम वासियोंके लिये अपने कन्धेपर जल लादकर ले आया करते थे, सबकी सेवा किया करते थे और भिक्षा मांगकर स्वयं निर्वाह किया करते थे। ऐसे ही लोग जनताका कल्याण कर सकते हैं। आश्रमोंके प्रतिष्ठापकोंको कभी भी चन्देके लिये अपील नहीं करनी चाहिये। संन्यासाश्रमके ऊपर तो यह कार्य लाञ्छन लगाता ही है, भिक्षा मांगनेका एक और ढङ्ग होनेसे यह साधकके लिये भी अनिष्टकर है। इस तरह मांगनेसे साधककी भावुक, कोमल, अध्यात्मपथारूढ़ बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, और कालान्तरमें वह रुपयोंमें ही डूब जाता है।

आश्रमके लिये अच्छे कार्यकर्त्ताओंका भी अभाव ही रहा करता है। अतः यह तो बहुत बुरी बात हुई कि आश्रम का निर्माण कर दिया किन्तु न तो उसके लिये धन है, न अच्छे कार्यकर्त्ता और न स्वयं यौगिक शक्ति जिससे सारे कार्य सुगमतया हो जायें। शान्त रहे, भगवान्का ध्यान करे, चिन्तन करे, अपने कार्यमें लीन रहे। पहले अपना तो सुधार करले। जो अपनी ही नहीं उन्नति करेगा, जो स्वयं अन्धकारमें भटकता रहेगा, वह भला दूसरोंकी क्या सहायता कर सकता है। अन्धा अन्धेको तो रास्ता दिखा नहीं सकता। दोनों ही गड्ढेमें गिर पड़ेंगे और अपना पैर तोड़ बैठेंगे।

आरम्भमें देखा जाता है कि साधक बहुत उत्साहके साथ कार्य करते हैं। पहले आध्यात्मिक साधनमें उनको अत्यन्त आनन्द प्राप्त होता है। वह समझता है कि उसकी साधना शीघ्र ही कुछ फल देगी। किन्तु जब यह फल उसकी धारणाके अनुसार जल्दी नहीं मिलता तो वह हतोत्साह हो जाता है। उसका उत्साह मन्द पड़ जाता है और वह साधन क्रियाको छोड़ बैठता है। साधनोंमें उसका विश्वास ही नहीं रह जाता।

मनुष्य सदा भिन्न भिन्न चीजें प्राप्त करते रहना चाहता है। इसका फल यह होता है कि वह स्वार्थी बन जाता है। स्वार्थसे आसक्तिकी उत्पत्ति होती है। आसक्तिके कारण ही 'अहंता' और 'ममता' की उत्पत्ति होती है और यहीं से दुःखोंकी प्राप्तिका आरम्भ होता है। माया-चक्रका परिभ्रमण यहीं से शुरू होता है। मनुष्य वासनाओंका गुलाम बन जाता है। उसके हाथ पैर कठिन शृंखलाओंमें बंध जाते हैं। मकड़ी की भांति अपनेही द्वारा निर्मित जालमे वह अपनेआप फँस जाता है और अपना विनाश कर डालता है।

दुःख और चिन्ता

एकान्त, शान्त कमरेमे बैठकर चिन्तन करना चाहिये, विचार करना चाहिये। सुख मनकी आन्तरिक अवस्था है। धन सम्पत्ति पर यह नहीं अवलम्बित है और ऐसा नित्य देखा भी जाता है कि जहा धनी दुःखी हैं, वहा निर्धन साधारण व्यक्ति सुखी हैं। कौपीनधारी साधुके पास कौन धन रहता है? किन्तु वह तो सबसे अधिक सुखी रहता है। उसको आध्यात्मिक सुख प्राप्त रहता है।

विषय-भोगसे वासनाकी शान्ति होनेके बजाय उलटे काम-वासना अथवा तृष्णा उसी प्रकार प्रदीप्त होती है, जैसे—आगपर घी डालनेसे उसकी लपट बढ़ती है। जितनी कम अभिलाषा होगी, उतना ही अधिक सुख मिलेगा। दूध कितने लोगोंको गुण करता है, कितने लोगोंको अवगुण। अधिक दूध भी पीनेसे कै हो जाती है। ज्वरके दिनोंमें तो यह तनिक भी अच्छा नहीं लगता। अतः समझना चाहिये कि सुख पदार्थोंमें नहीं है, बल्कि अपनी मानसिक भावनामें है। आम मीठा नहीं होता केवल हमारी कल्पना, हमारी

भावनाके कारण ही वह इसे मीठा लगता है। स्त्रीमें सौन्दर्य नहीं होता केवल हम उसमें सुन्दरता की कल्पनाका आविष्कार करते हैं। इसलिये कुरूपा नारी भी अपने पतिको सुन्दर लगती है, क्योंकि वह उसको सुन्दर समझता है। सांसारिक पदार्थोंमें यदि रत्तीभर सुख है तो पहाड़भर दुःख।

विषय-भोगमें एक प्रकारका आकर्षण होता है। जबतक मनुष्यको ये पदार्थ मिल नहीं जाते, तबतक उसके मनमें जैसे—मोह बना रहता है। वह उनको प्राप्त करनेके लिये कठिन परिश्रम करता है। उसका मन सदा चंचल रहता है तथा वह शङ्काशील रहता है। किन्तु जिस क्षण उसको ये पदार्थ मिल जाते हैं, उनके अन्दर वह प्रेम, वह आकर्षण नहीं रह जाता। उनको प्राप्त कर लेनेके अनन्तर वह अपनेको बन्धनमें पाता है। अविवाहित युवक सदा अपने विवाहकी बात सोचा करता है। किन्तु विवाह हो जानेके बाद अपनेको वह बन्धनमें समझने लगता है। अपनी पत्नीकी सारी इच्छाओंको पूरा करनेमें वह अपनेको असमर्थ पाता है। घर द्वार छोड़कर वह वनमें भाग जाना चाहता है। चाहे मनुष्य सम्पत्तिशाली हो, किन्तु निःसन्तान रहनेपर अपनेको सबसे अधिक दुःखी समझता है। पुत्रोत्पत्तिके लिये वह क्या नहीं करता। कभी तीर्थोंमें जाता है, कभी जप-जाप करता है। इसी चिन्तामें घुला जाता है, किन्तु जहां पुत्रोत्पत्ति हुई कि वह दुःखी हुआ। भांति भांतिके दुःख, भांति भांतिके कष्ट। कभी लड़का बीमार है तो डाक्टरोंकी दवामें धनका व्यय हो रहा है। कभी कोई बात है। यह सब मायाके खिलवाड़ हैं। संसारमें मोहका ही प्राबल्य है।

अभीप्सित पदार्थों के न मिलनेपर मनुष्य दुःखी हो जाता है, क्रुद्ध हो जाता है। यदि किसीको भोजनके अनन्तर चामकी, फल और दूधकी आदत

हो और उसको यह चीजें न मिलें तो उसके क्रोधका ठिकाना नहीं रहता। अपनी स्त्री को, नौकरोंको अकारण क्रोधान्ध होकर वह डाटता है। स्त्री की मृत्युपर पति दुःखी होता है, किन्तु इसलिये नहीं कि उसका एक जीवन-सङ्गी खो गया, बल्कि इसलिये कि उसको विषय-भोगका सुख अब न मिलेगा। दु खका कारण ही सुख भोगकी अभिलाषा है। मृत्युका कारण विषय-भोगके प्रति आसक्ति है। यदि सुखकी अभिलाषा हो तो विषय-भोगसे दूर रहे। यदि अमरत्व प्राप्त करनेकी स्पृहा हो तो विषयी जीवनसे दूर रहे।

छोटी उम्रमें ही नेत्रोंपर चश्मे लगाना, घड़ी पहिनना, ऋण लेकर मोटर खरीदना, भांति भांतिके वस्त्रोंका पहनना, बनाव सिंगार, सिगरेट पीना, मांस खाना, मद्य पान करना, जुआ खेलना, नाचना, सिनेमा देखना आदि यही तो आधुनिक सभ्यताके उपहार हैं। शान-शौकत और ठाट-बाटसे रहना ही आजकल सभ्यताका प्रतीक समझा जाता है, किन्तु इसने मनुष्यको अवनतिके गर्तमें ढकेल दिया है, भिखारियोंका भिखारी बना दिया है।

मनकी दो भावनाओं—राग, द्वेषसे ही ससार-चक्रका परिचालन होता है। सासारिक पदार्थोंके प्रति मनमें राग उत्पन्न होता है, क्योंकि उनसे उसको सुख मिलता है। जहां कहीं आनन्दका आभास मिला, मन उस ओर आकृष्ट और फिर लीन हुआ। इसीको राग कहते हैं। इससे दुःख और बन्धनकी ही प्राप्ति होती है। जब उस पदार्थसे मनको दूर होना पड़ता है तो उसको अपार दु खका अनुभव होता है। राग ही सारे दु खोंकी जड़ है। दु खजनक वस्तु-ओंके प्रति मन कभी भी आकृष्ट नहीं होता। उनके प्रति तो उसके मनमें घृणाका भाव ही उदय होता है। उदाहरण-स्वरूप कहा जा सकता है कि

राग-द्वेष

कोई सर्प, बिच्छू अथवा चीतेको नहीं पसन्द करता। रागके साथ सुख और द्वेषके साथ दु:ख लगा रहता है। सासारिक व्यक्ति इनका दास बना रहता है। सुख मिलनेपर वह प्रसन्न होता है, दु:ख मिलनेपर रोता है। सुख देने-वाले पदार्थोंसे वह लिपटा रहता है, दु ख देनेवाले पदार्थोंसे विरक्त।

सभी लोगोंके मनमें विषय-भोगके प्रति चाह रहती है। राजसिक मनकी यह प्रवृत्ति ही है कि वह एक क्षण भी सुखोपभोग किये विना नहीं रह सकता। सुख भोगनेके लिये लोग अनेक प्रकारकी कृत्रिम चीजोंका उप-भोग करते रहते हैं। आधुनिक विज्ञानने सुख भोगनेके कृत्रिम साधनोंकी राशि एकत्र कर दी है। आधुनिक सभ्यताको हम विषय-भोगका दूसरा नाम दे सकते हैं। होटलोंसे, सिनेमासे, हवाई जहाजसे, रेडियोसे विषयाग्नि प्रदीप्त ही होती है। अपनी इच्छाको पूरी करनेके लिये लोग भिन्न भिन्न प्रकारके आविष्कार करते रहते हैं। भोजनमें, खाने-पीनेमें, रहन-सहनमें, कपड़े-लत्तेमें सबमें कृत्रिमता। तरह तरहसे लोग वाल बनाते हैं। कितने साधक अपनी यौगिक शक्तिसे विषय-भोगके नये किन्तु स्थायी साधन एकत्र करना, प्राप्त करना चाहते हैं। वह अच्छी तरह रहना घूमना-फिरना चाहता है। कल्प-वृक्षके नीचे रहकर वह अमृतका भी पान करना चाहता है और साथ ही साथ इन्द्रादि देवताओंके साथ रहकर परियोंके नृत्य और गन्धर्वोंके गानका भी आनन्द लेना चाहता है। किन्तु यह निरर्थक विचार एव कल्पना है। दृढ-निष्ठ साधक कभी भी ऐसी कल्पनाए मनमें न लायेगा। वह सदा इनसे विरक्त रहेगा। सुख भोगकी वह तनिक भी चिन्ता नहीं करेगा। वह उनको विषवत और मलवत समझेगा।

ससार दु:खों और कठिनाइयोंसे भरा हुआ है। योगियों, भक्तों एव

ज्ञानियोंको छोड़कर कोई भी इनसे मुक्त नहीं है। सर्वत्र यही बात है।

कमला और कृष्ण नि सन्तान थे। एक दिन जब वे सोए हुए थे तो कमलाने कृष्णसे कहा—"अगर मेरे सन्तान हो तो आप उसके लिये सोनेका क्या प्रबन्ध करेंगे ?" कृष्णने कहा—मैं इसी चौकीपर उसके सोनेकी व्यवस्था करूंगा।" ऐसा कहकर वह अपनी स्त्रीसे थोड़ा-सा दूर हट गये। कमलाने फिर पूछा—"यदि एक और पुत्र हो तो आप क्या करेंगे ?" कृष्णने कहा—"मैं उसके लिये भी इसीपर व्यवस्था करूंगा।" इतना कहकर वह थोड़ा और हट गये और चौकीके ठीक किनारे पहुच गये। कमलाने तीसरी बार पूछा—"अगर मेरे एक और लड़का हो तो ?" कृष्णने कहा कि वह भी इसीपर रहेगा। वह थोड़ा और हटे कि नीचे गिर गये। उनके बायें पैरमें मोच आ गयी। कृष्णके पड़ोसीने आकर पूछा कि क्या बात है, तो कृष्णने कहा कि मैंने अपने कल्पित पुत्रोंके कारण अपना पैर तोड़ लिया। यही ससारके लोगोंकी गति है। मिथ्या अभिमान और मिथ्या सम्बन्धके कारण ही वे दुख उठाते रहते हैं।

चतुर्थ प्रकरण

—०—

शरीर

—

स्त्री दुःखका कारण है। मनुष्यको उससे सदा ही दुःख मिलता रहता है। वही उसके बन्धनका कारण है। स्त्री कोई अन्य चीज़ नहीं है। वह केवल हाड़-मांसका एक पुतला है। जो पुरुषको सदा दुःख देती रहती है, उसकी शक्तिको क्षीण करती रहती है तथा दुष्प्रवृत्तियोंको जगाती रहती है। केवल उसको प्रसन्न करनेके लिये, सन्तुष्ट करनेके लिये पुरुष न जाने क्या क्या कर बैठता है। किन्तु जो भी कर्म, बुरे या भले मनुष्य करता है, उसके परिणाम उसको ही भोगने पड़ते हैं। स्त्रियोंके पीछे पीछे फिरनेमें क्या आनन्द है? स्त्री में सौन्दर्य ही कहा है? विचार करना चाहिये, चिन्तन करना चाहिये। क्या कोई विवेकी व्यक्ति भी ऐसा सोच सकता है! क्या वह इस भ्रमजालमें फँस सकता है? स्त्री के शरीरमें जो भी सौन्दर्य दिखाई पड़ता है, वह वास्तवमें अन्तर आत्माका प्रकाश है। यदि किसी रुग्ण स्त्री की ओर देखा जाय तो तुरन्त मालूम पड़ जायगा कि वास्तवमें उसके शरीरमें सौन्दर्य नहीं है। उसकी आखें बैठ जायेंगी, चेहरा सूख जायेगा तथा कोमलता नष्ट हो जायेगी। वृद्धा स्त्री के चेहरेका सौन्दर्य कहाँ चला जाता है। उसके चेहरे पर तमाम झुर्रियां पड़ जाती हैं, उसमें तनिक भी आकर्षण नहीं रहता। फिर क्यों नहीं मनुष्य उनके प्रति आकृष्ट होता, क्यों नहीं उसके सौन्दर्य पर

रीझता। कारण स्पष्ट है। स्त्री में सौन्दर्य नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। मनुष्यका मन सौन्दर्यकी, रूपकी कल्पना कर लेता है, भ्रामक मायाजालमें फँस जाता है। अन्यथा शरीरमें मलके सिवाय और रहता ही क्या है। मास, रुधिर, हड्डी, प्रस्वेद यह सब क्या है? मल ही तो है और फिर इनके योगसे बनी हुई चीज़, शरीरमें जो कुछ आकर्षण होता है, वह भी क्षणिक, अस्थायी। स्त्री के प्रति आसक्ति और प्रेम रखनेसे बुद्धि भ्रष्ट होती है। मनमें बुरे विचार प्रवेश करते हैं तथा मुक्तिका मिलना असम्भव हो जाता है।

यदि स्त्री के प्रति आकर्षणकी भावना न रहे, यदि विषय-भोगकी चाह न रहे, तो जितने बन्धन हैं, सब विशृङ्खलित हो जायें। इसका कारण यह है कि मनके विकार ही मिट जायेंगे और फिर मनके विकारोंके मिटनेसे ही बन्धनोंका नाश होता है। कहा ही है—"**मन एवं मनुष्याणां कारण बन्धमोक्षयोः**।" विषय-भोगसे बढ़कर विष ससारमें कोई है ही नहीं। विष-पान करनेसे तो केवल एक बार शरीरपात् होता है, किन्तु विषय-भोग-रूपी विषका पान करनेसे तो जन्म-जन्मान्तरके लिये मनुष्यका नाश हो जाता है। इस शरीरका निर्माण निम्न इच्छाओंकी पूर्तिके लिये नहीं हुआ है। इसका निर्माण कठोर तपस्या करनेके लिये हुआ है, जिससे आगे चलकर अनन्त सुखकी प्राप्ति हो। मानव शरीर ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तिके अर्थ निर्मित हुआ है। भवसागरको पार करनेके लिये यह नौका सदृश है।

यह शरीर दु:खोंका कारण है। इसमें मल ही मल भरा हुआ है। इसके कारण ही मान, अपमान, निन्दा, अपयश, दु:ख, शोककी सृष्टि होती है। इसका कुछ ठिकाना भी नहीं। क्षणमात्रमें ही यह नष्ट हो जाता है, आज है कल

नहीं। अत निरन्तर रहनेवाले, चिरन्तन सत्य आत्माका ही चिन्तन करना चाहिये। आत्मा शुद्ध, बुद्ध और पवित्र है। उसका ही ज्ञान कल्याणकर हो सकता है। यह शरीर जिसको हम वर्तमान देखते हैं, न तो भूतकालमें था न भविष्यमें रहेगा। अत इसको वर्तमानमें भी नास्ति समझना चाहिये। यदि शुद्ध बुद्धिसे इसपर गम्भीरतया विचार किया जाय तो विश्वके प्रति अत्यन्ताभावका विचार दिनों दिन मनमें घर करता जायेगा।

यह शरीर, जिसमें मल, प्रस्राव आदि भरे हुए हैं, नाशवान है। जीवन से ही शरीर है और जब जीवनका ही ठिकाना नहीं तो इस शरीरका क्या? मृग तृष्णा सदृश, मायाजाल सदृश यह है। इससे ही शत्रुओंकी उत्पत्ति होती है, इससे ही दुश्मन बढते हैं तथा इससे ही सबसे द्वेष-भाव बढ़ता है। प्राण निकल जानेपर यह काष्ठवत् भूमिपर पड़ा रहता है। इसीसे दु ख शोक है। यह शरीर ही मनुष्यका वास्तविक शत्रु है। इस शरीरके साथ मलवत् व्यवहार करना चाहिये, इस शरीरको सजाने सँवारनेसे क्या लाभ? इसमें चिपटे रहना भूल है, मूर्खता है। कोरे अज्ञानके वश लोग ऐसा करते हैं।

"इस ससारमें कोई वस्तु मेरी नहीं है। यह शरीर भी मेरा नहीं है।" ऐसे विचारोंको मनमें पल्लवित करना चाहिये। यही बुद्धिमानी है। "यह मेरा है। यह चीज मेरी है। मैं अमुक व्यक्ति हू। मैं विद्वान हू। मैं बुद्धिमान हू।" आदि मूर्खतापूर्ण विचार हैं। इस शरीरपर वास्तविक स्वामित्व तो मछलियोंका, शृगालोंका और गीधोंका होता है। फिर मनुष्य इसको अपना समझनेकी भूल न जाने क्यों कर बैठता है। इस शरीरकी इतनी सेवा करनेसे इसको इतना सँवारनेसे वासनाकी वृद्धि होगी एव शरीरके प्रति आसक्ति बढ़ेगी। अत इस शरीरको अपना समझकर इसकी सेवा न करनी चाहिये।

फोड़ेको धोते हैं। फिर उसपर मलहम लगाकर पट्टी बाधते हैं। इसी प्रकार यह शरीर भी एक फोड़ेके सदृश है। नित्य तो इसको धोते हैं, आहारकी व्यवस्था इसके लिये करते हैं तथा वस्त्रसे ढँकते हैं। साधु, विरक्त लोग इसको फोड़ेके ही सदृश समझते हैं। वे इसकी कुछ भी चिन्ता नहीं करते। किन्तु सासारिक विषयी लोग दिनरात इसकी सेवामें, इसकी शुश्रूषामें, इसकी सजावटमें लगे रहते हैं। यह लोग केवल प्रेमवश ऐसा करते हैं। वस्त्रका प्रयोग शरीरके सौन्दर्यकी वृद्धि करनेके लिये नहीं किया जाता है। वास्तवमें शरीर एक चमड़ेके थैलेकी भाँति है, जिसके भीतर मल आदि भरे हुए हैं। वस्त्रकी उपयोगिता इस गन्दे शरीरको ढँकनेके लिये की जाती है। सादा वस्त्र पहिनना चाहिये। उच्च विचार रखना चाहिये। वास्तविक सौन्दर्य आत्मज्ञान एव ब्रह्म-साक्षात्कार होनेपर ही मिल सकता है। इस शरीरका सौन्दर्य कृत्रिम है। चर्ममें सुन्दरता नहीं होती। अविनाशी अनन्त सौन्दर्य केवल ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेपर ही मिल सकता है।

ऐ अज्ञ मानव! क्या तुझे इस नाशवान गन्दे शरीरको 'अह' अथवा यह मेरा है, कहते हुए लज्जा भी नहीं मालूम पड़ती। मछलिया, शृगाल एव गीध तक यह कहते हैं कि मनुष्योंके शरीरपर हमारा अधिकार है। यह ससार असार एव विरस है। इस कूड़ा करकट भरे हुए अपवित्र पञ्चतत्वों द्वारा निर्मित शरीरसे अपनेको अलग समझना चाहिये। इसमें मल, मूत्र, रक्त, मास, मज्जा, मेद ही तो भरे हैं। इससे रोग और दुःखोंकी ही तो उत्पत्ति होती है तथा यह बुराइयोंकी ही तो जड़ है। शरीरको ही सब कुछ समझना मूर्खता है। रौरव नरकमें पड़ना अगर हो तो शरीरके साथ अपने को गिने। यदि मनुष्य भी ऐसा ही समझने लगेगा तो उसमें और कीट-

पतङ्गोंमें अन्तर ही क्या रहेगा जो इस शरीरको पाकर बहुत प्रसन्नताका अनुभव करते हैं एव शरीरको ही सब कुछ समझते हैं।

यह सब मायाके खेल हैं। माया एक बहुत कुशल जादूगरनी है। उसने शरीरका निर्माण कर उसके भीतर गन्दगी भर दी है और ऊपरसे सुन्दर चमकदार चमड़ेसे उसको ढँक दिया है। ऐ भ्रान्त मनुष्य ! कबतक तुम इस शरीरको अपना समझते रहोगे ? कबतक तुम इस नश्वर शरीरसे चिपटे रहोगे। शरीरको अपना समझनेकी भूलसे अब भी बचकर अपनेको सच्चि-दानन्द-स्वरूप समझो। जब शरीर स्वस्थ रहे, जब रोग दोषसे मुक्त हो, जब वृद्धत्व दूर हो, जब इन्द्रिया प्रबल हों, जब उनकी गति विषयकी ओर न हो, जब जीवनके क्षीण निष्प्रभ होनेका समय समीप न हो तभी मनुष्यको ब्रह्म-साक्षात्कार करनेके पुनीत कार्यमें लग जाना चाहिये। आग लगनेपर कुआ खोदनेसे कोई लाभ नहीं हो सकता।

पञ्चम प्रकरण

—०—

नारी

—

विवाह अभिशाप है, बन्धन है। इससे बढकर बन्धन ससारमें और कोई है ही नहीं। एक कामुक अविवाहित युवक समझता है कि स्त्री के बिना उसका जीवन ही नीरस है। अविवाहित व्यक्ति जहा पहले स्वतन्त्रताका उपभोग करता है, वहा वैवाहिक जीवनमें प्रवेश करनेसे उसके हाथ पैर कठिन शृङ्खलामे बँध जाते हैं। उसके सिरपर चिन्ताका एक भार लद जाता है। यही सब विवाहित व्यक्तियोंका अनुभव है। विवाहके बाद लोग अपनी भूल पर पछताते हैं और तब फिर उनको दु.ख होता है। कामुकता ही ससारमें दु.खादि का प्रजनन करती है। जिसको सन्तप्त, विदग्ध मानव जातिकी दुरावस्थाका ज्ञान है, वह कभी भी विवाह करनेका या सन्तानोत्पत्तिका विचार न करेगा। स्त्री ही निरन्तर दु ख और चिन्ताका कारण है, उसके ही कारण मनुष्यको बन्धनमें पड़ना पड़ता है। कोमलाङ्गी, लावण्ययुक्त ललनाके लिये कोई ब्रह्म साक्षात्काररूपी परमरत्नका परित्याग नहीं कर सकता।

लेखकके अन्दर नारी जातिके प्रति बड़ी श्रद्धा और आदरका भाव है। अत जहां कहीं भी स्त्रियोंकी निन्दा की गयी है, वहां मनुष्यकी परमोन्नतिको दृष्टिगत रखकर। पाठकोंको याद रखना चाहिये कि उसी तरह पुरुषकी निन्दा का भाव भी उसमें सम्मिलित है।

स्त्री केवल आमोदका साधन है। वास्तवमें उसकी कोई आवश्यकता नहीं। विवाहके बाद सभी दु:ख मानते हैं। विविध प्रकारके दु:ख विवाहके बाद आ घेरते हैं। मनुष्य सोचता है, आज मेरा अमुक लड़का बीमार है, आज अमुक लड़केको सांघातिक चोट लगी है, आज अमुक लड़कीका विवाह करना है, आज स्त्री के लिये आभूषण क्रय करना है, आदि आदि।" इन्हीं कठिनाइयोंमें, भव-माया जालमें मनुष्य पड़ जाता है, फँस जाता है और फिर गर्त-मग्न हो जाता है।

स्त्री पतिके जीवनको एवं पति स्त्री के जीवनको काम-वासना द्वारा विनष्ट कर डालता है। अनुसूया और सावित्री सब जगह नहीं मिलतीं। यदि पति पत्नीकी इच्छाएं न पूरी करे तो उसके लिये आफत हो जाये। पत्नी अपने पतिको बीस तरहसे परेशान करेगी। इसका अनुभव प्रत्येक व्यक्ति अपने घरमें कर सकता है। सबके घर यही बात होती है। अतः प्रत्येक व्यक्तिको चाहिये कि शान्तिका पाणिग्रहण कर विवेक एवं वैराग्यरूपी सन्तान को जन्म दे, जिससे आत्मज्ञानरूपी सुखकी प्राप्ति हो।

मनुष्य अपनी युवा स्त्री की प्रशंसा करता है, उसके घूंघरदार बालोंपर, गुलाबी गालोंपर, प्रवाल सदृश किसलयरूपी अधरोंपर, शुक-पिकरूपी नासिकापर, मनोमुग्धकारी रूपपर सब कुछ न्यौछावर करनेको तयार हो जाता है। किन्तु इसी पत्नीकी आभामें यदि कुछ कमी हुई तो मनुष्यको वह तनिक भी अच्छी नहीं लगती। दूसरे विवाहके लिये लोग तैयार हो जाते हैं। क्या मनुष्य अपनी पत्नीसे आत्मभावके कारण प्रेम करता है? क्या कभी वह इस बातका अनुभव करता है कि उसके भीतर तथा उसकी स्त्री के अन्दर एक ही आत्मा का अधिवास है? क्या उसका प्रेम शुद्ध, सच्चा, निःस्वार्थ तथा एकसा रहता

है ? कभी नहीं। यदि यह बात मनुष्यके भीतर होती तो वह अपनी स्त्री से दिनोंदिन, जैसे जैसे उसकी अवस्था अधिक होती जाती, अधिक प्रेम करता जाता। किन्तु यह आत्मभाव ज्ञानसे प्राप्त होता है, न कि भोग-विलाससे। ज्ञानोद्भव-प्रेम ही वास्तविक प्रेम है, जो चिरस्थायी रहता है। ससार या सासारिक पदार्थोंके प्रति आसक्ति रखनेवाला व्यक्ति कभी भी आध्यात्मिक आनन्दका उपभोग नहीं कर सकता। घर, द्वार, स्त्री, बच्चे, धन, सम्पत्तिमें फँस जानेके कारण मनुष्य अपने दिव्य स्वभावको भूल जाता है। मरनेके बाद मनुष्यके साथ कुछ भी नहीं जाता, केवल उसके सत्कर्म और दुष्कर्म ही उसके साथ जाते हैं। ईश्वर मनुष्यके कर्मानुसार ही उसको फलाफल दिया करता है।

एक कामुक अविवाहित युवक सदा इस चिन्तामें लीन रहा करता है कि उसको अपनी युवती भार्याके साथ रहनेका सौभाग्य कब प्राप्त होगा। किन्तु इसके ठीक विपरीत एक वासना विहीन गृहस्थ सोचा करता है कि उसको कब घर-द्वारसे छुट्टी मिलेगी कि वह वनमें जाकर भगवदाराधन तथा आत्म-चिन्तन में अपना समय व्यतीत करे। गीतामें कहा है—**मन एव मनुष्याणा-कारणं बन्धमोक्षयोः**। अत इस सर्व-आपद-कर्त्ता मनका शमन कर आत्मस्वरूपमें प्रतिष्ठित होना ही मनुष्यका परम पुरुषार्थ होना चाहिये।

ऐ मूढ़ मानव! तू स्त्रियोंका गुलाम हो गया है, तू उनका क्रीड़ाकन्दुक बन गया है। तू वासनाओंका दास है, तेरी इच्छायें अपार हैं, तू घोर कामुक बन गया है। कबतक तू इस अवस्थामें पड़ा रहेगा ? योगवाशिष्ठमें लिखा हुआ है—

अर्थात् वे नराधम जिनको इस बातका ज्ञान रहता है कि ससार अथवा

सासारिक पदार्थों में सुखका लेश भी नहीं है, यदि उन्हीं पदार्थों से चिपटे रहें तो उनके लिये मूर्खकी, गधेकी भी उपाधि कम ही है।

मानवीय प्रेममें कुछ तत्व नहीं होता। यह व्यर्थ है। यह केवल आकर्षणमात्र रहता है। इसमें केवल विषय-लालसा, विषय-वासना रहती है। इसमें स्वार्थ होता है। यह परिवर्तनशील होता है, अत केवलमात्र कपट ही इसमें होता है। यदि पति स्त्री की इच्छाओंकी पूर्ति करनेमें असमर्थ होता है, तो वह पतिको तनिक भी चिन्ता नहीं करती। ठीक उसी तरह यदि किसी कारण स्त्री के रूप-सौन्दर्यमें कुछ कमी पड़ जाय, या कुछ विकार उत्पन्न हो जायें तो पति उसकी बात तक नहीं पूछता। सच्चा, चिरस्थायी प्रेम तो केवल ईश्वरसे ही प्राप्त हो सकता है। प्रेममें सत्य है, स्थायित्व है। प्रेम अपरिवर्तनशील है।

स्त्री की कल्पना मनमें विकार उत्पन्न करती है। काम-वासना बड़ी बुरी वस्तु है। यह मनुष्यको मोहन, स्तम्भन, उन्मादन, शोषण एव तापन नामक पाच पुष्प-बाणोंसे बेधा करती है। विवेक, विचार, भक्ति और ध्यानसे इनके प्रहारको नष्ट करना चाहिये। कामका उपशमन होते ही क्रोध, लोभ, आदि विकार स्वय शान्त हो जाते हैं। काम-वासनाको प्रदीप्त करनेवाली वस्तु स्त्री है। यदि उसीको पराजित कर दिया जाय तो उसका अनुगमन करनेवाले स्वत मिट जायेंगे। सेनापतिके पराजयके बाद सेनाके पर कभी टिक सकते हैं? कामको नष्ट कर दे, क्रोध, लोभ, मोह आदि स्वय विनष्ट हो जायेंगे।

मानवीय रक्तका स्वाद ले चुकनेके बाद व्याघ्र सदा उसकी ओर दौड़ा करता है। वह मानव-रक्त का प्रेमी हो जाता है। उसी प्रकार मनकी दशा है। एक बार जहा इसे विषय-सुखका चस्का लगा कि मन उधरको दौड़ा।

निरन्तर विचार और ब्रह्म-भावनासे ही मनको विषयोंसे हटाया जा सकता है। मनको सदा इस प्रकार समझाना चाहिये कि विषय-सुख असत्य है, मायावी है तथा दु:खोंसे भरा हुआ है। मनमें सदा आत्मज्ञान सम्भूतसुख और शान्तिकी कल्पनाको स्थान देना चाहिये। सर्वदा ऐसा विचार मनमें उत्पन्न करना चाहिये कि वास्तविक जीवन तो आत्मामें ही है, विषय-सुखमें नहीं। जब सदा मनमें इस प्रकारके विचारोंको स्थान दिया जायेगा तो क्रमश: यह स्वयं ही ठीक हो जायेगा।

भगवद्गीतामें लिखा है—

(१) अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम्।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रह: ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदु:खदोषानुदर्शनम् ॥
असक्तिरनभिष्वंग: पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्वज्ञानार्थदर्शनम्।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥

अर्थात् अभिमान हीनता, दम्भ हीनता, अहिंसा, सहनशीलता, सरलता, पवित्रता, स्थिरता, मनका संयम, इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्ति, 'मैं' पनका

अभाव, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था, रोग तथा दु:खको दोषयुक्त समझना, पुत्र, स्त्री गृहादिमें अनासक्ति, उनके सुख दु:खका विचार न करना, इष्ट अनिष्ट प्रत्येक प्रकारकी घटना घटित होनेपर शान्त रहना, चित्तको अस्थिर न होने देना, मुझमें अनन्य-भावयुक्त एक-निष्ठ भक्ति, जहां चित्तको शान्ति मिले, वहीं रहनेकी इच्छा, साधारण लोगोंमें रहनेसे वैराग्य, अपनेको सदा ब्रह्मका अंग समझना, ज्ञान प्राप्तिके लिये मोक्षको सबसे श्रेष्ठ मानना—इन सबको ही ज्ञान कहते हैं। इससे जो भिन्न है, यह अज्ञान है।—(१३-७-११)

(२) प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुरा: ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ॥
असत्यमप्रतिष्टं ते जगदाहुरनीश्वरम् ।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धय: ।
प्रभवन्त्युग्रकर्माण: क्षयाय जगतोऽहिता ॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विता: ।
मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान्प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रता ॥
चिन्तामपरिमेयांच प्रलयांतामुपाश्रिता ।
कामोपभोगपरमा एतावदितिनिश्चिता: ॥
आशापाशशतैर्बद्धा: कामक्रोधपरायणा ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥

असुर स्वभावके लोग नहीं जानते कि किसमें प्रवृत्ति होनी चाहिये और किससे निवृत्ति। वे न पवित्रता जानते हैं, न आचार जानते हैं और न उनमें सत्य ही रहता है। वे कहते हैं कि जगत्‌का कोई ईश्वर नहीं है, वेदादि प्रमाण झूठ हैं, धर्म अधर्म कोई चीज़ नहीं है। परस्परके विरुद्ध गुणोंसे इसकी उत्पत्ति होती है। स्त्री और पुरुषकी परस्परमें प्रवृत्ति इसका कारण है। इसके सिवा और है ही क्या? जो लोग जगत्‌का अहित करनेके लिये जन्म लेते हैं, वे ही यह मत मानते हैं। उनका चित्त नष्ट, उनकी बुद्धि अल्प और उनके कर्म झूठे होते हैं। जिससे कभी तृप्ति नहीं होती, ऐसे कामका आश्रय ग्रहण कर दम्भ, अभिमान और मदसे युक्त होकर तथा मूर्खताके कारण झूठी समझसे वे बुरे काम करने लगते हैं। जबतक जीते रहते हैं, तबतक वे घोर चिन्तामें पड़े रहते हैं। उनका यह दृढ़ मत है कि सबसे उत्तम कामोपभोग हैं, इसके सिवा ससारमे कुछ नहीं है। वे शतशः आशा-पाशोंमें बाध कर, काम क्रोधमें प्रवृत्त होकर काम भोगके लिये अन्यायसे धन संग्रह करते हैं।—(१६,७-१२)

विष्णु पुराणमें लिखा है, "वे मूर्ख जो रक्त, मांस, मज्जामय इस शरीर के साथ प्रेम करते हैं, निश्चय ही नरकको पसन्द करते हैं। जिसे इस अपवित्र, अशुद्ध शरीरसे ही घृणा नहीं होती, उसको अनासक्तिके लिये और कौन-सी बात बतलायी जाये।

महर्षि वशिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीसे कहा था—नाड़ी अस्थि और ग्रन्थिसे बनी हुई मासकी पुतली जो रमणीय है उसके यन्त्रके समान चञ्चल अग-समूह में कौन-सी वस्तु अधिक सुन्दर है? त्वचा, मांस, रक्त, आसुओंका पानी और नेत्र इनको छोड़कर स्त्री के अङ्गमें कौन-सी वस्तु सुन्दर है, जिसपर लोग

आसक्त होते हैं ? यदि इनके अतिरिक्त कोई सुन्दर वस्तु हो तो भले ही उनपर आसक्त हुआ जा सकता है अन्यथा व्यर्थ मोहमें पड़नेसे क्या लाभ ? कहीं केश हैं, कहीं रुधिर है और इन्हीं सबसे स्त्री का शरीर बना है। विवेकी पुरुष इस निन्दित नारी-देहका क्या करेगा ? जो शरीर वस्त्र, उबटनों आदिसे सदा सुशोभित किया जाता है, उसे मासाहारी जीव भक्षण कर लेते हैं। सुमेरु पर्वतके शिखरपर प्रवाहित गङ्गाजलकी धाराके सदृश सुन्दर मोतियोंकी माला जिस स्त्री के स्तनोंपर देखी गयी थी, उन्हीं स्तनोंका स्वाद कुत्ते समय पाकर श्मशान भूमिके समीप ऐसे लेते हैं, जैसे अन्नके छोटे पिण्ड का। कज्जलसे काले केशोंको धारण करनेवाली, स्पर्श करते ही सन्ताप देनेवाली नेत्रोंको प्रिय, पापरूपिणी अग्निशिखारूप स्त्रियाँ मनुष्योंको तृणवत् जला डालती हैं। देखनेमे सरस सुन्दर होनेपर भी स्त्रियोंमें सरसता, कोमलता नहीं होती। वे अपने कुटिल कटाक्षोंकी अग्निसे मनुष्यरूपी ईंधनको जलाकर भस्मीभूत कर देती हैं। काम-व्याधने मुग्ध मनुष्यरूपी पक्षीको फँसानेके लिये स्त्रीरूपी जाल फैला रखा है। मनुष्य इस ससाररूपी सरोवरके मत्स्य हैं, चित्तरूपी कीचड़ उनके किलोल करनेका स्थान है, दुष्ट वासना मछली पकड़नेवालोंकी वशी है। स्त्रिया उस वशीमें चूनेकी गोलीके समान है। स्त्रियोंके सम्बन्धमे अधिक क्या कहा जाये। ये दु खोंकी सागर हैं, पाप, भय, आदि दुर्गुणोंको उत्पन्न करनेवाली हैं। हाड़, मास, रुधिरका बना हुआ यह नारीरूप कितनी कम अवधिमें नष्ट हो जाता है। स्त्री के समीप रहनेवाला व्यक्ति ही सम्भोगकी स्पृहा करता है। नारी विहीन व्यक्तिके लिये सम्भोगकी गुञ्जाइश कहां ? उसके परित्यागका अर्थ ही संसारका परित्याग है और ससारके परित्यागका अभिप्राय अनन्त सुखकी प्राप्ति है।

❀ काम-वासना बहुत बुरी वस्तु है। यही कारण है कि मुझे ऐसा चित्र यहां अङ्कित करना पडा। बिना इस प्रकारके वर्णनके कामोपशम सम्भव नहीं। वास्तवमें स्त्री की पूजा माता-शक्तिकी तरह करनी चाहिये। वह विश्व की सृजन शक्ति है, उसकी आराधना आवश्यक है। वास्तवमें भारतमें तो धर्मकी, मर्यादाकी रक्षा स्त्रियोंके द्वारा हो रही है। श्रद्धा एव भक्ति हिन्दू नारियोंके चरित्रकी एक विशेपता है। काम-वासनासे घृणा करनी चाहिये न कि स्त्रियों से।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता।
यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्त्र फला क्रिया॥"

जहां स्त्रियोंकी पूजा होती है वहीं देवताओंकी कृपा रहती है। जहां उनका अपमान होता है वहां किसी भी धार्मिक कृत्यका फल नहीं मिलता।

षष्ठम प्रकरण

—०—

संसार

—

यह संसार बड़ा विचित्र है। अच्छी और बुरी सभी प्रकारकी चीज़ोंका यह एक सुन्दर-सा संग्रहालय है। जहां एक ओर फूलोंसे लदे पेड़, हिमालयकी चोटी, नियागारा जल प्रपात, नीलाकाश, ताजमहल आदि एकसे एक सुन्दर और आकर्षक चीज़ें यहां पड़ी हुई हैं वहीं दूसरी ओर भूचाल ज्वालामुखी, आग, बवन्डर, भयङ्कर व्याधियां फैली हुई हैं जो एक ही बारमें अगणित प्राणियोंको अपने गालमें डाल लेती हैं।

रूप-यौवन-सम्पन्ना सुन्दर स्त्री मनोमुग्धकर होती है। उसके हर एक नाज़ अन्दाज़में मीठी मीठी मुस्कराहट होती है, सुकुमारिता होती है, और जब वह वस्त्रालङ्कारोंसे सुशोभित होकर कोमल स्वरमें गाती है अथवा नृत्य करती है तो वह मनको हर लेती है। किन्तु वही नारी जब वस्त्रालङ्कारोंके लिये अपने पतिपर क्रुद्ध होकर, कर्कश वाणी द्वारा प्रहार आरम्भ करती है, जब भीषण रोगोंसे अथवा जरासे उसका सौन्दर्य विकृत हो जाता है तो वह घृणास्पद हो जाती है।

वसन्त प्राणप्रद होता है, उसमें उल्लास होता है, उन्माद होता है एवं चित्तको प्रफुल्लित करनेकी शक्ति होती है। किन्तु ग्रीष्मका सूर्य जला डालता है, हेमन्तका वायु डङ्क मारता है।

पुत्रोत्पत्ति पर, विवाह पर, धन सम्पत्तिकी प्राप्ति पर लोग बहुत प्रसन्न होते हैं, आनन्द मनाते हैं, किन्तु स्त्री की मृत्यु पर, धनके नाश पर, व्याधि से पीड़ित होनेपर लोग शोक करते हैं, रोते हैं।

अब यह विचारणीय बात है कि इस विश्वकी भ्रामक वस्तुओंमें वास्तवमें सुख है अथवा दु.ख। यह मायाका खिलवाड़ है। ससार केवलमात्र एक दृश्य है। मन और इन्द्रिया मनुष्यको सदा छला करती हैं। लोग भ्रमवश दु खको सुख मान लिया करते हैं। ससारमें अल्पमात्र भी सुख नहीं है। अत' स्वार्थ भावका, धन एकत्र करनेकी प्रवृत्तिका परित्याग करना चाहिये। सीधे उस नटके पास पहुँचनेका प्रयत्न करना चाहिये जो इस दृश्यको पीछेसे दिखाता रहता है। उसको प्राप्त किये बिना स्थायी सुख और शान्तिकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। नित्य ध्यान और जप द्वारा उसको प्राप्त करना चाहिये जिससे उसमें लीन हुआ जा सके।

धूम्रवत्, बुलबुलेकी तरह, छायाकी तरह ससार असत्य है। अत सांसारिक पदार्थों की ओर, नाम यशकी ओर कभी न दौड़ना चाहिये। विषयी-जीवन ससारमें कितना मिथ्या है, कितना क्षणभंगुर है। विषय-सुख कितना परिवर्तनशील है! बिहार एव क्वेटाके भूकम्पोंमें कितने प्राणी स्वाहा हो गये, कितने राजमहल ध्वस्त हो गये। यही आधिदैविक ताप है और फिर भी लोग शिमलेमें, मसूरीमें मकान बनाकर आनन्दपूर्वक चिरकाल तक रहना चाहते हैं। कितनी आत्म-प्रवञ्चना है, कितना भ्रम है, कितनी भूल है। ये लोग कृमिकीट सदृश हैं। ईश्वर इनको विवेक, वैराग्य और भक्ति दे।

चाहे कोई शिमला जाये, चाहे काश्मीर जाये, चाहे दार्जिलिङ्ग जाये, चाहे वियना जाये, सब जगह एक ही बात है, सुख कहीं नहीं मिलता।

घृणाकी दृष्टिसे देखना चाहिये तथा मनको उससे सदा दूर रखना चाहिये। तभी मनुष्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

इस क्षणभगुर मायामय जीवनसे लिपटना नहीं चाहिये। निर्भीक रहे, विरक्त हो तथा भगवान्के श्रीचरणोंमें अपनेको अनुरक्त कर दे। उपनिषदोंमें वर्णित ब्रह्म अथवा आत्माको ही प्राप्त करनेका उद्योग करना चाहिये। अपनी स्त्री, सन्तान, घर, धन-दौलतके प्रति विवेक-हीन-रूपसे अनुरक्त रहकर मनुष्य अपने वास्तविक दिव्य स्वरूपको भूल जाता है। क्रमश· वह नास्तिक हो जाता है। स्त्री, सन्तान धन ही उसके लिये ईश्वर तुल्य हो जाते हैं, यद्यपि ये वास्तवमें उसके शत्रु हैं।

यदि मनुष्य वैराग्य-भावको विकसित करे, यदि इन्द्रियोंपर नियन्त्रण रखे, दु ख, शोक, ईर्ष्या, द्वेष, जरा, मृत्यु आदि समन्वित काम-वासनाका यदि परित्याग कर दे तो विश्वकी कोई चीज़ उसको आकृष्ट नहीं कर सकती। लोभ और मोहको वह जीत सकता है। अनन्त सुख और शान्तिकी प्राप्ति उसको होती है। कोमलाङ्गिनियोंके नयन-शर उसको चोट नहीं पहुचा सकते। काम-विकार उसको चञ्चल नहीं कर सकता।

यदि मनुष्यके अन्दर केवल ईश्वरको प्राप्त करनेकी अभिलाषा हो तो उसे ससार एवं सासारिक पदार्थोंको निर्मम होकर ठुकरा देना चाहिये। विषय-वासनाकी भी कोई हद होती है। अनुराग, प्रेम, स्वार्थ, अज्ञानकी भी कोई सीमा होती है। भूतमें अगणित माता, पिता, सगे सम्बन्धी बीत चुके होते हैं। मनुष्य अकेले आता है, अकेले जाता है। उसके कर्मों के अतिरिक्त कोई भी उसका साथ नहीं देता। ब्रह्म-साक्षात्कार करनेका उद्योग करना चाहिये। सारे सङ्कटोंसे मोक्ष तभी मिलेगा।

जो मूर्खतावश स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति आदिमें लगा रहता है, उसके लिये अपने दिव्य स्वरूपको भूल जाना निश्चित है।

साधकके लिये सांसारिक व्यक्तियोंका सहवास स्त्रियोंका सहवास यदि अधिक बुरा नहीं तो कम भी नहीं है।

सांसारिक व्यक्ति थोड़ा धन, स्त्री, सुत आदि पा जानेसे अपनेको बहुत अधिक सुखी समझते हैं। किन्तु यदि उनको अमरत्वका पान करनेका जरा भी अवसर मिले तो दोनों सुखोंके अन्तरको समझ सकेंगे।

मनुष्यको भूत स्वप्नवत् प्रतीत होता है, फिर लोग न जाने क्यों यह नहीं समझ पाते कि वर्तमान भी भविष्यमें स्वप्नकी तरह प्रतीत होगा।

संसारके समस्त सुख आरम्भमें अमृतोपम प्रिय लगते हैं। किन्तु अन्तमें विषकी भाँति अप्रिय। यह संसार एक मेलेकी भाँति है जो कुछ दिनके लिये लगता है और इस मेलेरूपी संसारमें यह शरीर एक दृश्यकी तरह क्षणमात्र रहनेवाला है। यदि कोई समस्त संसारका राजा हो जाय तो भी उसको असल सुख और शान्तिके दर्शन न होंगे।

संसारमें मनुष्यका जीवन केवल मोह, लोभ, दुःख और शोकसे भरा हुआ है। जिनके अन्दर वास्तविक वैराग्य और विवेक होगा, उनको संसारके कोई पदार्थ नहीं विचलित कर सकते।

चारों तरफसे बँधे रहने तथा इस परिवर्तनशील जगत्में विभिन्न परिस्थितियोंसे घिरे रहनेके कारण मनुष्य उसी भाँति विभिन्न प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित तथा मृग-तृष्णामें भ्रमित होकर सदैव विक्षिप्त घूमा करता है जैसे बड़े-भारी चट्टानके सामने बालूके कण। चूंकि कालका स्वभाव ही व्यतीत होना है इसलिये एक क्षणका मूल्य भी जीवनके सौ वर्षके बराबर समझना चाहिये।

जब ऐसा है तो क्या कारण है कि मनुष्य अपने जीवनको इतना महत्व देता है और अतृप्त वासनाओंसे जनित विभिन्न दु ख और निराशामें गर्त रहता है ? उस मनुष्य जैसा इतना पतित जीवन और किसका होगा जो इन्द्रियोंसे भ्रष्ट हो गया है ? इस प्रकार क्षणभगुर जीवन घृणित है ।

ब्रह्माण्डके अगणित जगत्को दृष्टिमें रखकर यदि इस मानव जीवनका विचार किया जाये तो यह एक परमाणुके सदृश होगा। यह एक बहुत आश्चर्यकी बात है कि मनुष्य दु ख और पीड़ासे भरे हुए इस ससारका इतना अधिक मूल्य आकता है ।

सबसे बड़े आदमीको भी कालान्तरमें सबसे छोटा बनना पड़ेगा। जितने सुख हैं, जितने बड़े लोग हैं, जितने सजातीय सम्बन्धी हैं, सभी भूतकालमें हो चुके हैं। अत. वर्तमानमें रहनेवाली चीज़ोंके स्थायित्वका क्या प्रमाण है। अगणित बार पृथ्वी और इसके शासक नष्ट हो चुके हैं, न जाने कितनी बार ब्रह्म और जीव, देवलोक और इन्द्र हुए और विनष्ट हुए। उनकी कोई सख्या नहीं निर्धारित की जा सकती। जगत् की उत्पत्ति और विनाशका कुछ ठिकाना नहीं कितनी बार हुआ। ये नष्ट पदार्थ कहा गये ? सासारिक जीवनके स्थायित्वका क्या हिसाब ! इस अवस्थाका कारण मनुष्यका अज्ञान, अज्ञानके कारण मायाके फन्देमें फसकर शरीर तथा ससारके प्रति आसक्ति रखना एव वासनाको प्रदीप्त करना ही है। किन्तु अब तक जो हुआ सो हुआ। इस ससारमें चाहे आरम्भमें चाहे मध्यमें अथवा अन्तमें रहनेवाली कोई भी वस्तु प्राणीके लिये लाभकर नहीं है। क्या ससारके निर्मित सभी पदार्थ विनाशी नहीं हैं ? मनुष्य अपने दैनिक जीवनमें किस प्रकारका पापपूर्ण कार्य करता रहता है और उन सारे कार्यों का सम्पादन इस शरीरसे ही होता है।

लड़कपनमें मनुष्य अज्ञानके परदेसे ढका रहता है, युवावस्थामें स्त्रियोंके जालमें फँस जाता है और बुढ़ापेमें ससार और दुर्बलताके बोझके नीचे करा-हता रहता है। अन्तमें मर जाता है। इस प्रकार सदा कोई न कोई काम उसको लगा ही रहता है, फिर भला उसको सत्कर्म करनेके लिये अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनेके लिये कब समय मिलेगा! ससारमें मायाका जाल कैसे फैल गया? वास्तवमें मनुष्योंके मनकी भावना ही ससारके रङ्गमञ्चपर मायाके खेल खेला करती है। जब एक बार पलक गिरने और उठनेकी अवधिसे अनेक ब्रह्म बनते और बिगड़ते हैं तो उनकी तुलनामें भला साधारण मनुष्य क्या चीज़ है!

मनुष्य ससारमें सबको प्रसन्न नहीं कर सकता। गदहे, लड़के और उसके वृद्ध पिताकी कथा ध्यानमें रखनी चाहिये। शास्त्र पुकार पुकार कर कहते हैं, 'ससारमें शुद्ध, पवित्र सात्विक व्यक्तिको नीच, पतित कहते हैं, चतुर व्यक्तिको दम्भी, क्षमावान् व्यक्तिको दुर्बल, शक्तिशालीको क्रूर, हतबुद्धि को चोर तथा सुन्दरको कामुक और लम्पट कहा करते हैं। तब भला ससारको कौन सन्तुष्ट रख सकता है। कोई भी उपाय नहीं है, जिसका आलम्बनकर मनुष्य सबको सुखी कर सके। मनुष्यको केवल अपनी भलाई बुराई देखनी चाहिये। ससारके सारे लोगोंकी बातोंपर ध्यान नहीं देना चाहिये।"

भगवान् कृष्ण गीतामें कहते हैं—

"हे पाण्डव! प्रकाश, प्रवृत्ति और मोहके प्राप्त होनेपर जो दुःखित नहीं होता, तथा इनके चले जानेसे जो पानेकी इच्छा नहीं करता, उदासीन मनुष्यके समान जो सुख, दु खको समान मानता है और गुणोंके कार्य होते

ही रहते हैं, यह जानकर जो निश्चिन्त रहता है और कभी विचलित नहीं होता है, जिसको सुख दुःख, मिट्टीका ढेला, पत्थर और सोना, प्रिय अप्रिय निन्दा और स्तुति समान है, जो धीर और शान्त रहता है, जिसको मान अपमान तथा मित्र और शत्रु समान हैं, जो बखेड़ोंमें नहीं पड़ता उसे गुणातीत कहते हैं। जो एकनिष्ठ होकर भक्तिपूर्वक मेरी सेवा करता है, वह निश्चय ही इन गुणोंको भली भाँति जीतता है और ब्रह्म-भावके योग्य होता है।"

इस स्थिति तक पहुचनेके लिये यह आवश्यक है कि मनुष्यको पहले आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहिये, आत्मानुभव करना चाहिये। इतना कर चुकने के बाद ही मनुष्य इतनी शक्ति प्राप्त कर सकता है कि वह निर्ममतापूर्वक ससारके पदार्थों को ठुकराकर आत्माका ध्यान करे और त्याग-पथानुगामी हो। भगवद्गीताके निम्नलिखित श्लोकोंका ध्यान और उनपर विचार करनेसे मनुष्य को अपने लक्ष्यतक पहुंचनेमें यथेष्ट सहायता मिलेगी :—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनियत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोग युक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥ ५-२१

"बाहरी पदार्थोंमें चित्तको आसक्त न होने देकर जो भीतरी सुखका अनुभव करता है, वह ब्रह्ममें अन्तःकरणसे मिलता है—

सुखमात्यन्तिक यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वत ॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥ ६-२१,२२

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ ६–२८

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १३-१२

गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ १४-२०

जिस अवस्थामें वह सुख पाता है, जिसकी कोई सीमा नहीं है, जो केवल बुद्धिसे जाना जाता है, पर इन्द्रियोंसे नहीं जाना जा सकता और जिस दशामें मनुष्य आत्मस्वरूपसे विचलित नहीं होता, जो दशा दुःखसे इतनी दूर है कि मनुष्यको, उसके मिलनेपर उससे बढ़कर दूसरा कोई लाभ ही नहीं मालूम होता और जिस दशामें मनुष्यको विचलित करना असम्भव हो जाता है ....। इस प्रकार मनको सर्वदा अधीन रखनेसे जो पापसे मुक्त हो गया है, उस योगीको ब्रह्म-साक्षात्कारका असीम सुख अनायास ही मिलता है। अब मैं बताता हूं कि ज्ञेय (अर्थात् जानने योग्य) किसे कहते हैं। जिसके जाननेसे मोक्ष मिलता है, जिसका आदि नहीं, जो अत्यन्त बड़ा है, जिसके बारेमें कोई भले ही कहे कि वह नहीं है, पर जिसका न होना कभी सम्भव नहीं, वही ज्ञेय है। जो देही, देहमें उत्पन्न होनेवाले इन तीनों गुणों के पार चला जाता है वह जन्म, मृत्यु, बुढ़ापे और रोगसे मुक्त होकर मोक्ष पद पाता है।

मनुष्यको निष्क्रिय कभी नहीं होना चाहिये। सदा उद्योग करते रहना चाहिये। आध्यात्मिक अग्निको सदा हृदयमें जलाए रखो। मनुष्यका जन्म ही

लक्ष्य प्राप्तिके लिये होता है। मनुष्यके अन्दर ही आध्यात्मिक प्रकाश होता है। बहुत साधन और तपस्याके बाद तो मानव शरीर किसी तरह प्राप्त होता है। यह कितनी सौभाग्यकी बात है कि मनुष्यके अन्दर आध्यात्मिकता होती है और इसपर भी वह व्यक्ति जिसके अन्दर आध्यात्मिक रुचि और आध्यात्मिक जिज्ञासा हो; वह सचमुच योगीन्द्र है। किन्तु उसको थोड़ी और साधना करनी होगी, जिसमें वह सुगमतया अपने लक्ष्यपर पहुंच सके। इसके लिये किसी प्रकार भी अहभाव नहीं रहना चाहिये। ब्रह्मकारवृत्ति का भी शमन करना चाहिये और तभी मनुष्य अपने जीवनके लक्ष्य भूमाको प्राप्त कर सकेगा। यह प्रत्येक व्यक्तिके लिये सम्भव और साध्य है।

सप्तम प्रकरण

—०—

वैराग्य-शतक का सार

—◌०◌—

महाराज भर्तृहरि-कृत वैराग्य-शतकको मुख्यतया निम्नलिखित दस भागों में विभाजित किया जाता है :—

वासनाकी निन्दा, इन्द्रिय-निरोध, विषय-भोग दरिद्रताकी भावनाकी निन्दा, विषय-भोगके पदार्थों को नश्वरताका वर्णन, काल-कौतुकका वर्णन, तपस्वी और राजाकी तुलना, ज्ञानाग्निको प्रज्वलित कर मनके विकारोंको भस्मीभूत करना, सत् और असत्का भेद, भगवान् शिवकी आराधना एव आत्मज्ञानीके तौर तरीके।

अपनी मर्यादा, प्रतिष्ठा और कुलीनताको चाहे बलि चढ़ाकर कोई आकाश पाताल एक करके भी धन प्राप्त करना चाहे तो उसे निश्चितसे अधिक नहीं मिल सकता। उसे अपने कार्यमें कभी भी सफलता नहीं मिल सकती और यदि सयोगवश वह सफल भी हो जाये तो उसकी इच्छा तृप्त नहीं होगी। ऐ मनुष्य! तूने कौनसे पाप, कौनसे अधम कार्य पेट भरनेके लिये एव वस्त्रसे शरीर ढकनेके लिये नहीं किये?

आशा एक बहती हुई सरिताके सदृश है। जिसमें वासनारूपी जल प्रवाहित होता रहता है। अभिलाषायें लहरें हैं, आसक्ति जलजन्तु है। इस वेगवती अज्ञानरूपी अगणित भवरोंसे भरी हुई सरिताको पार करना कठिन

है और इतना ही तो नहीं है ? इसके किनारे इतने ऊंचे और गहरे हैं कि उनपर चढ़ सकना भी कठिन है। इस नदीके उसपार अमित सुख शान्तिका भण्डार हैं, किन्तु उनको प्राप्त करनेकी सामर्थ्य तो केवलमात्र शुद्ध मानसवाले योगियोंमें ही हैं।

यह मनुष्यकी बहुत बड़ी मूर्खता है कि वह यह जानकर भी कि संसारके पदार्थ विनाशी हैं तथा वह उसको किसी क्षण भी छोड़ सकते हैं, वह उनको छोड़कर अनन्त सुख प्राप्त करनेका उद्योग नहीं करता।

इससे बढ़कर गौरवमय, आह्लादमय एवं आश्चर्यपूर्ण और क्या हो सकता है कि एक व्यक्ति जिसको धनधान्यसे पूर्ण सुख प्राप्त हो रहा हो, अकस्मात् विवेक बुद्धि प्राप्तकर धन सम्पत्तिका परित्याग कर दे और ब्रह्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये उद्योगशील हो जाये ?

महलोंमें रहनेवाले, विषय-भोगमें लीन, आकांक्षाओं और वासनाओंके शिकार व्यक्तियोंसे उन तपस्वियोंका जीवन अधिक धन्य है जो जङ्गलोंमें, गुफाओंमें रहकर ईश्वरका ध्यान किया करते हैं। ठाटवाटसे रहनेवाले, सुन्दर वस्त्राभूषण पहिननेवाले, लोगोंपर रोब जमानेवाले लोगोंसे उन तपस्वियोंका जीवन अधिक उच्च और महान् है जो भिक्षा मांगकर रहते हैं, जमीन ही जिनका बिछौना है, जो आत्म-निर्भर हैं, जो फटे गूदड़ेमें ही प्रसन्न रहा करते हैं।

मछली केंचुओंको अज्ञानके कारण पकड़नेके लिये दौड़ती है, पतङ्ग अज्ञानके कारण ही अग्निकी लपटोंमें अपनेको भस्म कर देता है, किन्तु मनुष्य जिसके बुद्धि है, जो विचारवान् कहा जाता है, न जाने क्यों दुःख, दोषपूर्ण विषय-भोगमें लिपटा रहता है। भ्रम कितनी बड़ी चीज़ है।

का शीघ्र विनाश होता है। यह ससार ही मिथ्या है। केवलमात्र ईश्वर सत्य है।

सांसारिक सुख भोगकी ओरसे विरक्त होकर आत्मज्ञान प्राप्तकर सुख भोगना चाहिये।

अशुद्ध अपवित्र गर्भमें से उत्पन्न होकर, युवावस्थामें विषय-भोगमें लगे रहकर, मानसिक अशान्ति भोगकर, वृद्धावस्थामें कोमलाङ्गिनियोंके हास्यजनक पदार्थ होकर मनुष्य न जाने कैसे इस ससारमें इस शरीरसे सुख प्राप्त करना चाहते हैं!

यह जानकर भी कि जरा राह देखा करती है, मृत्यु अपने मुखमें रखनेके लिये सदा प्रतीक्षा किया करती है, रोग मन और शरीरको सदा विकृत् किया करते हैं, न जाने मनुष्य किस प्रकार अविचारी रूपसे बुद्धि-हीन होकर सदा पाप कर्म किये जाता है। कितने आश्चर्यकी बात है?

ऐ ससारके प्राणियो! मेरी बातें सुनो। यह ससार विनाशी है। यहा के सुख, यहा के भोग सब नश्वर हैं। इन विनाशी पदार्थों मे सुख कहा है जो तुम इनके पीछे पड़े रहते हो? यदि तुम्हें वास्तवमे सुख प्राप्त करनेकी अभिलाषा है तो चित्त एकाग्र करके, ध्यान करो, आत्मज्ञान प्राप्त करो, और फिर अक्षय सुख भोगो।

भला वे प्रसिद्ध पुरातन नगर कहा गये जिनका इतना रोचक वर्णन हम पढ़ा करते हैं, वड़े वड़े शक्तिशाली राजे कहा गये, उनके मन्त्रिगण कहा गये, वे कोमल अङ्गोंवाली तरुणी नारिया क्या हुई, जिनके कारण इतने रक्तपात हुए, वड़े बड़े कोट्याधीश और लक्षाधिपति कहाँ गये? उनका क्या हुआ?

कितने आश्चर्यकी बात है कि उन्हीं भोगोंको निरन्तर भोग कर भी, उन्हीं चीजोंको खा पीकर भी उन्हीं स्त्रियोंको भोग कर भी मनुष्य का मन नहीं ऊबता है, वह नहीं घबराता है।

मनुष्यके जीवनकी अवधि बहुत ही अल्प है—केवल सौ ही वर्ष तो! इसका आधा वह सोकर गवा देता है तथा बाकीका आधा लड़कपन और बुढ़ापेमें व्यतीत कर देता है। इसके बाद शेष समय वह रोग, दुःख, शोक आदिमें बिता देता है। अब उसके पास आनन्द भोगनेके लिये समय ही कहा शेष रहा?

कौन बड़ा है?—तपस्वी या राजा। यदि राजाका अधिकार भूमिपर, सम्पत्तिपर होता है तो तपस्वीका अधिकार ज्ञानपर होता है। यदि राजाका नाम लोगोंकी जबानपर रहता है तो तपस्वीका नाम संसारके कोने कोनेमें आच्छादित रहता है। यहा तक कि बड़ेसे बड़े विद्वानको उससे ईर्ष्या होने लगती है। यदि राजा तपस्वियोंसे उदासीन रहता है तो तपस्वीको भी राजा की सम्पत्तिसे तथा उससे कोई मतलब नहीं रहता। यदि राजाका अधिकार धनपर होता है तो तपस्वीका शब्दोंपर। यदि राजा बड़ा पराक्रमी योद्धा होता है तो तपस्वीके अन्दर भी इतनी शक्ति होती है कि वह दम्भीसे दम्भी, अभिमानीसे अभिमानीको नम्र और शान्त बना दे। यदि राजाको अपने राजसी वस्त्रोंका अभिमान होता है तो तपस्वीको अपनी सादगीका। वह पेड़ोंकी छालमें ही सन्तुष्ट रहता है। अमित वासनाओंवाला ही व्यक्ति वास्तवमें निर्धन है तथा जो सन्तोषी है, वही सबसे अधिक सुखी है, धनी है।

भिक्षा मागकर जीवन-यापन करना चाहिये, आकाशको वस्त्र एव पृथ्वीको बिछौना समझना चाहिये। धन-सम्पत्तिसे कोई मतलब नहीं रखना चाहिये।

मनुष्य कितना मूर्ख है ? वह निरन्तर अनावश्यक, व्यर्थकी चीजोंके पीछे पड़ा रहता है। ऐ मन ! इधर उधर मत भटक। शान्त हो, निर्विकार हो। होनेवाला अवश्य होगा। अतीतकी चिन्ता न कर, अनागतके सम्बन्धमें विचित्र विचित्र कल्पनायें न कर। विषय-भोगकी अभिलाषा न कर। भ्रमको दूरकर। देवाधिदेव, योगीन्द्र भगवान् शिवकी भक्ति कर। पाप नाशिनी भगवती भागीरथीके रम्य तटपर रहनेका निश्चय कर। भाग्यकी अस्थिरताका विचार कर, आत्मज्ञानरूपी रत्न प्राप्त करनेके उद्योगमें लग जा। जब हृदयमें भगवान् शिवकी भक्तिका भाव हो, जब जन्म मृत्युके प्रति डर न हो, जब ससार एव काम-वासनासे अनासक्ति हो, जब एकान्त वनस्थलीमें वास हो जहां सासारिक व्यक्तियोंकी गन्ध भी न पहुँचती हो तो जीवन कितना धन्य है। इससे बढ़कर और कौन-सा जीवन चाहिये।

अनाशवान्, निर्विकार, महद् ब्रह्मका ध्यान करना चाहिये तथा ज्ञान और सुख प्राप्त करना चाहिये।

जब शरीर रोगोंसे अथवा जरासे मुक्त हो, जब इन्द्रियाँ निश्चल हों अवस्था काफी हो तब बुद्धिमान् व्यक्तियोंको अपने लक्ष्यकी प्राप्तिकी ओर पूरे उत्साहसे लग जाना चाहिये। घरमें आग लगनेपर कूआँ खोदनेसे क्या लाभ ?

त्रिलोकमें भी खोजनेपर कोई ऐसा साधन आजतक नहीं मिला जिसके अनुसार चलकर मन स्त्रियोंके जादूसे अपनेको बचा सके। उनकी ओर मुग्ध न हो जाय।

ध्यानकी मुद्रामें रम्य गङ्गा तटपर शान्त एकान्त स्थानमे बैठे हुए, इस नश्वर ससारकी असारतापर विचारते हुए, जोर जोरसे शिव शिव रटते हुए

में कब इस आत्मानन्दकी दशाको प्राप्त कर सकूंगा। कब मेरे नेत्रोंसे आनन्दाश्रु छलक पड़ेंगे।

यदि शरीर पर केवलमात्र कौपीन रहे, यदि मन निश्चित, अचञ्चल रहे, यदि जीविका भिक्षोपार्जनसे चल जाये यदि एकान्त वनका वास हो, यदि पर्यटन एवं भ्रमणमें कोई असुविधा न हो, यदि योग साधनामें नियमितता हो, तो क्या ही सुन्दर अमूल्य जीवन हो और फिर इस अवस्था में त्रिलोकी के राज्यका भी क्या मूल्य है?
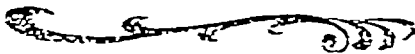
अष्टम प्रकरण

शिक्षाप्रद कथाये

राजकुमार की कथा

एक बार एक राजकुमार शिकार खेलने गया। रास्तेमें एक नदीके किनारे उसने अनन्य सुन्दरी एक राजकुमारीको देखा। उस राजकुमारीकी वृत्ति आध्यात्मिक थी। उसने कितनी वेदान्त सम्बन्धी पुस्तकें पढी थीं। उस समय वह आत्माको समझनेके उद्योगमें थी, वह आत्माका ध्यान कर रही थी। राजकुमार उसके रूपपर मुग्ध हो गया। उसने उसके सम्मुख विवाहका प्रस्ताव रखा, किन्तु राजकुमारीने अस्वीकार कर दिया। जब राजकुमारने बहुत अनुनय-विनय किया तो अन्तमें उसने कहा कि आप नौ दिनके बाद हमारे यहा आइये तो हम आपसे विवाह कर लेंगी। वेदान्ती तो राजकुमार भी था, किन्तु उसके अन्दर वास्तविक वैराग्य-भावना न थी। प्रतीक्षामें नौ दिन बिताकर दसवें दिन राजकुमारीके वासस्थानकी ओर अग्रसर हुआ।

राजकुमारी विवाह बन्धनमें नहीं पड़ना चाहती थी, अत उसने उससे बचनेका एक बहुत ही अच्छा उपाय ढ् ढ निकाला। उसने दस दिन तक लगातार तेज़ जुलाब लिया और जितने भी दस्त लगे उसको एक सुन्दर मुलम्मा किये हुए बर्तनमें रखकर अच्छी तरहसे रेशमी कपड़ोंसे ढककर खूब सजाकर रख दिया। दस दिन तक जुलाब लेनेसे उसका सौन्दर्य जाता रहा,

आखें धँस गयी, केवल हड्डीकी ठठरी शेष रही। इस प्रकार अशक्त, क्षीण-वदना वह राजकुमारी चारपाई पर पड़ रही।

आनन्द-मग्न राजकुमार उससे मिलनेके लिये आया। दासीने उसको राजकुमारीके कमरेमें पहुचा दिया, किन्तु राजकुमार उसको न पहचान सका। उसने दासीसे पूछा, वह सुन्दरी सुकुमारी कहा है? जिस सुन्दरीसे मेरी भेंट हुई थी, वह तो यहा नहीं दिखाई देती। राजकुमारीने उत्तर दिया, "ऐ राजकुमार! मैं ही वह स्त्री हू। मैंने अपना सौन्दर्य छिपाकर बगलवाले कमरेमें रख दिया है। मेरे साथ कृपया उस कमरेमें चलकर उसको देखिये।" इतना कहकर उसने राजकुमारके साथ दूसरे कमरेमें प्रवेश किया और रेशमी चादरोंको हटाकर राजकुमारसे कहा, "मेरे सौन्दर्यकी ओर देखिये। यह मेरे 'अस्थिचर्ममय देह' का सौन्दर्य है।" राजकुमार अवाक् हो गया। उसने उस स्त्री से कुछ नहीं कहा। उसके चरणोंपर गिर पड़ा और मा समझकर उसको प्रणाम किया। उसने राजकीय वेषभूषा, वस्त्रालङ्कारका परित्यागकर अरण्यवास करनेका निश्चय किया। उसके हृदयमें पूर्ण वैराग्यका भाव जाग्रत हो उठा। उसने एक ऋषिकी शरण ली और उसके आदेशानुसार तपस्या और ध्यान करके आत्मज्ञान प्राप्त किया।

नौकर की कथा

इन्द्रपुरके राजा नरेन्द्र सिंह बहादुरके एक नौकर था, जिसका नाम हीरा सिंह था। हीरा सिंहके मनमें एक बार यह विचार उत्पन्न हुआ कि राजकोष को तोड़कर यथेष्ट धन और आभूषणादि हर लू। ऐसा सोचकर उसने एक

दिन अर्द्ध रात्रिके समय कोषकी ओर प्रस्थान किया। रास्ता राजाके कमरेसे होकर जाता था। राजा और रानी बात कर रहे थे। उसने उनकी बातें ध्यानसे सुनीं। रानी ललिताकुमारी कह रही थीं, 'मेरे प्रिय! क्या सूरत-कुमारीका विवाह अब न करोगे? अब तो उसकी अवस्था काफी अधिक हो गयी। कब तक उसके विवाहको टाला जा सकता है।" राजाने कहा, "प्रिये! मैं तो स्वयं बहुत चिन्तित हूं। पिछले दो वर्षोंमें मैंने क्या कुछ उठा रखा है। किन्तु करूं क्या? कोई योग्य वर ही नहीं मिल रहा है।" रानीको इसपर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने राजासे बार बार कहा कि उसका विवाह शीघ्र कर डालो। अन्तमें राजाने कहा, "प्रिये ललिता! मैं सूरत-कुमारीका विवाह उसी योगीसे करूंगा जो आसपासके जङ्गलोंमें मुझे सबसे पहले मिलेगा। उसको मैं अपना आधा राज भी दे दूंगा।"

हीरा सिंह उन लोगोंकी बातें छिपकर सुन ही रहा था। उसने सोचा कि चोरीसे क्या लाभ। यदि पकड़ा जाऊंगा तो उल्टे कठोर दण्ड मिलेगा। क्यों न मैं जाकर जङ्गलमें योगीकी मुद्रा धारण कर बैठ जाऊं? इस प्रकार मुझे बिना किसी तरद्दुदके राजकुमारी भी मिल जायगी और आधा राज्य भी। यह विचार ज्योंही उसके मनमें आया त्यों ही वह योगीका वेष धारण कर जङ्गलमें चला गया और पद्मासन पर समाधिस्थ हो गया। शरीरको उसने एकदम सीधा रखा, तनिक भी हिलने डुलने न दिया, आंखें उसकी बन्द थीं। प्रातःकाल राजा वहां घूमते घूमते आया। उसने देखा कि योगी समाधिस्थ है। बड़ी देर तक बैठा रहा। अन्तमें एक घण्टेके बाद योगीने आंखें खोलीं। राजाने उसको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और महलमें दर्शन देनेकी प्रार्थना की। योगीने बहुत अनुनय के बाद स्वीकार कर लिया।

राजा योगीको दरबारके स्थानपर ले गये। वहां उन्होंने उसको गद्दीपर बैठाया, उसके चरण धोये, फिर पंखे झलने लगे। हाथ जोड़कर राजाने नम्र वाणीमें योगीसे कहा, "मेरे प्रभु! योगेश्वर! हमारे एक बहुत ही लावण्यमयी बाला है। कृपया उसको स्वीकार कर हमें कृतार्थ करें। इसके साथ ही साथ हमारी आधी धन-सम्पत्ति और राज्य भी स्वीकार करें। इस समय योगीके अन्दर विवेक बुद्धि जाग्रत हुई। उसने सोचा कि राजा उसका आदर केवल इसी लिये कर रहा था कि उसने यौगिक वेष-भूषा धारण कर रखी थी और योगियोंकी भांति व्यवहार कर रहा था। उसने और भी सोचा कि यदि मैं पाखण्ड का परित्याग कर, वास्तविक योगी हो जाऊं, यदि मुझमें आत्म-चेतनता भर चले तो लोग मेरा कितना आदर सम्मान करेंगे। केवल यह राजा ही नहीं बल्कि अगणित सम्राट्, सम्राज्ञी और राजकुमारियां मेरा चरण चूमनेमें अपना सौभाग्य समझेंगी। ऐसा सोचकर उसने तुरन्त ही गद्दीका परित्याग कर दिया, राजमहलको छोड़कर जङ्गलको चला गया। उसपर ईश्वरकी कृपा हुई, उसके भीतर विवेक और वैराग्यके भाव भर गये। आनन्दाश्रु उसकी आंखोंमें छा गये, उसके रोमाञ्च हो गया। उसके अन्दर विषय-वासनाकी चाह न रही। वह घने जङ्गलमें चला गया और कठोर तपस्या और ध्यान करनेके बाद उसने आत्मानुभव प्राप्त किया।
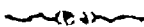
भगवान् बुद्ध की कथा—

प्राय २५०० वर्ष हुए उत्तर भारतमें शुद्धोदन नामके एक राजा रहते थे। गौतम नामका उनके सुन्दर सुकुमार एक पुत्र था। जब उसकी सोलह

वर्षकी अवस्था हुई तो यशोधरा नाम्नी एक अपूर्व लावण्यमयी राजकुमारीसे गौतमका विवाह हुआ। उस समय उनके राहुल नामका एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उनका जीवन आनन्द-पूर्वक बीतने लगा। अगले तेरह वर्षों तक उनका जीवन पूरा गृहस्थका सा बीता। उस अवधिके विषयमें उनके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा जा सकता। इसके बाद तो गौतम आगे चलकर आध्यात्मिक नभमें ध्रुवके समान एक प्रभापूर्ण नक्षत्र बन गये, जिनके आलोक से समस्त नभ-मण्डल जगमगा रहा है।

गौतम जिनको सिद्धार्थ भी कहते हैं, सदासे ही विचारवान् व्यक्ति थे। मधुर-भाषी, नम्र, दयालु तथा सहनशील तो वह अत्यधिक थे। एक दिन प्रातःकाल अपने पिताके साथ वह घोड़ेपर चढ़कर घूमने जा रहे थे। उस समय उनका चेहरा आनन्दसे पूर्ण था। किन्तु तत्काल ही उनका चेहरा उतर गया। उन्होंने देखा कि एक कृषक अपने बैलोंको मारकर खराब कर रहा है, बैल बेचारा दर्दसे, पीड़ासे, चोटसे कराह रहा था। उसकी पीठपर घाव हो गया था। फिर भी उस दुष्ट निर्दय कृषकने उसको मारना न छोड़ा। कुछ दूर जानेपर गौतमने देखा कि एक पण्डुकको बाज मारकर खा रहा है। फिर देखा कि एक पण्डुक कुछ मक्खियोंको मारकर खा रहा है। इन सबसे उनका मन बड़ा खिन्न हो गया और वे दुःखी क्लान्त मन घर लौट गये।

कुछ दिनोंके अनन्तर गौतमने एक स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि एक अत्यन्त वृद्ध और अशक्त व्यक्ति जिसको चलनेमें कठिनाई हो रही थी बुढ़ापेके कारण दुःखसे कराह रहा था। गौतमको मालूम हुआ कि किसीने उनसे भी कहा कि तुम भी एक दिन इसी प्रकार वृद्ध और अशक्त होकर दुःख पाओगे। इसके बाद गौतमने देखा कि एक व्यक्ति बीमार है। उसको कोई भीषण

वेदना है। गौतमको मालूम हुआ कि किसीने उनसे कहा, "ऐ गौतम ! तुम भी इसी प्रकार बीमार पड़कर दु ख पावोगे। इसके बाद उन्होंने एक वृद्ध पुरुषको मरे हुए पाया। उनसे फिर उसी आवाजने कहा, "ऐ गौतम ! तू भी एक दिन इसी तरह मरेगा।

गौतमके भीतर इन दृश्योंके देखनेके बाद पूर्ण वैराग्यका भाव उदय हुआ। उन्होंने अनुभव किया कि जीवन क्षणभगुर है, जगत् मिथ्या है। ऐसा विचार आते ही उन्होंने घर द्वार, स्त्री बच्चे धन सम्पत्ति सबको तिला-ञ्जलि देकर तपस्वीका व्रत लिया। पूरे सात वर्ष तक उन्होंने जङ्गलोंमें रहकर घोर तपस्या की। वह सदा इस खोजमें रहे कि किसी ऐसी चीज़को प्राप्त किया जाय, जिससे रोग शोक, दु ख, भय, चिन्ता मिट जाय। विषय-वासना से मनको पूर्ण विरक्ति हो गयी थी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सिद्धार्थने ससारका परित्याग खूब सोच समझकर किया। जब उन्होंने देखा कि ससारमें सुख नहीं है, शान्ति नहीं है और जब उनके अन्दर इनको प्राप्त करनेकी दृढ़ निष्ठा हो गयी तो उन्होंने इनको प्राप्त करनेकी चेष्टा की। यद्यपि पहले उन्होंने इनको अपने ही लिये प्राप्त किया तथापि उन्होंने सोचा कि जिस वस्तुसे उनका कल्याण हुआ है, वही वस्तु दूसरेके लिये भी कल्याणप्रद हो सकती है।

एक दिन जब वह बोधि वृक्षके नीचे ध्यान मग्न बैठे थे तो उनको ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होंने यह अनुभव किया कि ससार दु खोंसे भरा हुआ है, दु खोंका मूल कारण केवलमात्र वासना है। यदि वासनाका विनाश कर दिया जाये तो सब दु खोंका अन्त हो सकता है। इसके बादसे ही गौतम 'बुद्ध' कहे जाने लगे।

बुद्ध बहुत दयालु और सज्जन व्यक्ति थे। उन्होंने जिस धर्मका प्रचार किया उसको बुद्ध धर्म कहते हैं। उनके कथनानुसार किसीके साथ क्रूर व्यवहार करना, चाहे वह मनुष्य हो या पशु, अनुचित है। बुद्धके अनुयायियोंकी संख्या अपार थी। आजकल भी जितने विचारवान् व्यक्ति हैं, बुद्ध धर्मको सम्मान्य दृष्टिसे देखते हैं।

राजा भर्तृहरि की कथा—

एक बार राजा भर्तृहरि के दरबारमें एक बड़े महान् तपस्वी आये। भर्तृहरिने तुरन्त सिंहासनसे उठकर ऋषिको साष्टाङ्ग दण्डवत् किया और विविध प्रकारसे उनकी सेवा की। ऋषि भर्तृहरिकी सेवासे प्रसन्न हो गये। उन्होंने भर्तृहरिको प्रसन्न होकर एक अनूठा फल दिया, जिसके खानेवालेको अमरत्वकी और शान्तिकी प्राप्ति हो।

राजा भर्तृहरिके एक अपूर्व सुन्दरी रानी थी, जिसको राजा बहुत प्यार करते थे। उन्होंने सोचा कि इस फलको खानेवाली सबसे उपयुक्त पात्र वही रानी है। इस विचारके मनमें आते ही राजा उस फलको लेकर रानीके पास गये और उन्होंने वह फल रानीको भेंट किया। यद्यपि इस रानीपर भर्तृहरिका अगाध स्नेह था, तथापि रानीका वास्तविक प्रेम एक सारथीसे था, जो उसे यदा कदा रथपर बैठाकर घूमनेके लिये ले जाया करता था। अतः इस पापिनीने वह फल सारथीको ले जाकर दिया। किन्तु इस सारथीकी प्रेयसी एक वेश्या थी, जिसको उसने यह अनुपम फल भेंट किया। किन्तु इस वेश्याने सोचा कि राजा भर्तृहरिसे बढ़कर सत्पात्र उस फलको ग्रहण करनेको कौन हो सकता है।

ऐसा सोचकर उसने वह फल राजाको दिया। उस फलको देखकर राजा भर्तृहरि बड़े आश्चर्यमें पड़ गये। वह इस पहेलीको सुलझा न सके। उनकी समझमें न आया कि वह फल उस वेश्याके हाथमें कैसे पड़ा। वह तो रानीके लिये था। वह उस रानीकी चीज़ थी।

बहुत देर तक और गम्भीर चिन्तनके बाद वह उस पहेलीको स्वय हल करनेमें समर्थ हो सके। इस घटनाके कुछ ही समय पहले भर्तृहरिके भाईको रानीके गुप्त प्रेमका पता चल गया था और उन्होंने भर्तृहरिसे कहा कि राज-वशका इसमें घोर अपमान है कि एक ऐसी स्त्री राज-महिषी बनाकर रखी जाय जो इस प्रकार कुलटा हो और जो सारथीके साथ ही व्यभिचार करती हो। किन्तु रानी बड़ी चतुर थी। उसने इधर उधरसे प्रमाण इकट्ठे कर राजा के भाईकी बातको असत्य कर दिया और राजापर इस प्रकारका दबाव डाला कि वह क्रुद्ध होकर अपने भाईको निर्वासित कर दें। किन्तु इस घटनाको देखकर भर्तृहरिकी आखें खुलीं। उन्होंने पूरी गवेषणा की और अन्तमें अपने भाईकी बातको सत्य पाया। उनको अपने निरपराध प्रिय सहोदरके साथ एक कुलटाके कहनेसे ऐसा कार्य करनेपर महान् दुःख हुआ। उन्होंने देखा कि एक प्रिय भाई जो इतना सच्चा था और जिसने राज-वशकी मर्यादाको प्रतिष्ठित रखनेके लिये ही यह सब कार्य किया था, बुरी तरह आहत किया गया है। उनके भीतर वास्तविक वैराग्यका भाव प्रादुर्भूत हुआ। उन्होंने इस बातको समझा कि ससारमें कोई भी अपना नहीं है। स्त्री, पुत्र सभी दूसरे हैं। उनको इस बातका ज्ञान हो गया कि ये वास्तवमें मनुष्यके शत्रु हैं। उनको ससारसे विरक्ति हो गयी। उन्होंने सब कुछ छोड़कर सन्यास ले लिया, उन्होंने कुछ दिनों तक गम्भीर चिन्तन, आराधना और ध्यान किये और

अन्तमें आत्मज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने एक पुस्तक लिखी है, जिसका नाम "वैराग्य शतक" है। इसके पढ़नेसे मनुष्यके भीतर वैराग्यका भाव जाग्रत होता है और वह ससारसे विरक्त हो जाता है।
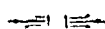
राजा ययाति की कथा—

एक वार ययाति नामके एक राजा राज करते थे। वे वहुत ही धर्मात्मा और साधु-स्वभाव नृप थे। उन्होंने १००० वर्षों तक ऐशो इशरत किया। किन्तु उनकी वासना तनिक भी कम न हुई। जव उनके अन्दर आनन्दोपभोगकी इच्छा अभी भी शेष रह गयी तो इन्होंने अपने पुत्रोंसे कहा, 'अभी तक मेरी इच्छायें पूर्ण नहीं हुई हैं। इसलिये तुम लोग अपनी युवावस्था एक सहस्र वर्षके लिये हमें देकर हमारा वुढ़ापा लेलो। इस अवधि के वीतनेपर मैं अपना वुढापा वापस ले लूगा और तुम्हारी युवावस्था तुम्हे वापस कर दूगा।" किन्तु पुरुको छोड़कर किसीने भी ययातिकी वात न सुनी।

पुरुने वहुत नम्रतापूर्वक पिताकी वात स्वीकार कर ली। उन्होंने ययातिको अपनी युवावस्था देकर उनका वुढापा ले लिया। साथ ही साथ वुढ़ापेके सारे लक्षण भी उनमें आगये। ययातिको मनचाही वस्तु प्राप्त हुई थी। फिर क्या था उन्होंने नये जोशके साथ विषय सुख लूटना आरम्भ कर दिया। उन्होंने पूरी उमङ्ग और लगनके साथ विषयरूपी प्रेमाग्निमें अपनेको भस्म होने दिया। वे अपनी इस अवस्थासे वहुत प्रसन्न थे, किन्तु जहा उनको अवधिकी समाप्ति की याद आती थी वह दुखी हो जाते थे।

जब निश्चित समय बीत गया तो पुरुके पास जाकर ययातिने कहा, "मेरे पुत्र ! तुम्हारी युवावस्थाको लेकर मैंने पूर्णरूपेण अपनी इच्छाके अनुसार कामोपभोग किया है। किन्तु वासना अभी क्षीण नहीं हुई। भोगसे वासना उत्तरोत्तर बढती ही है। आगमे घी डालनेसे जैसे उसकी लपटें बढती हैं, उसी प्रकार कामोपभोगसे वासना बढता है। यदि ससारकी समस्त वस्तुए किसीको प्राप्त हो जायें, तब भी उसकी वासनाका शमन न होगा, तब भी उसको सन्तोष न होगा। अत वासनाका विनाश ही श्रेयस्कर है। वासनाका शमन जल्दी नहीं होता। किसी प्रकार भी इसका नाश सरलतया सम्भव नहीं। परन्तु आनन्द इसके नाशमे ही है। सौ वर्षों तक मैंने कामोपभोग किया। अब मैं समझ गया। ब्रह्म-साक्षात्कारसे ही सुख और शान्ति सम्भव है। मै अब उसीके लिये प्रयत्न करूंगा और अपने जीवनके शेष दिन वनमे भगवदाराधनमे लगाऊंगा।"

इसके बाद उन्होंने पुरुको गद्दीपर बैठाकर अरण्यको प्रस्थान किया और तपस्वीका जीवन व्यतीत करने लगे।

नवम प्रकरण

—०—

श्रीशङ्कराचार्य की प्रश्नोत्तरी

—ಂ०ಂ—

१ प्रश्न— गुलामोंकी जञ्जीरोंने कौन जकड़ा है ?

उत्तर—जो इन्द्रियोंका दास है।

२ प्रश्न— मुक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर—सांसारिक पदार्थों से अनासक्ति ही मुक्ति है।

३ प्रश्न— रौरव नरक क्या है ?

उत्तर—मानव शरीर।

४ प्रश्न— स्वर्गका मार्ग कौन सा है ?

उत्तर—वासनाका विनाश ही स्वर्गका पथ है।

५ प्रश्न— नरकका पथ कौन है ?

उत्तर—नारी शरीर।

६ प्रश्न— स्वर्ग कैसे मिलता है ?

उत्तर—अहिंसासे।

७ प्रश्न— मनुष्यके शत्रु कौन हैं ?

उत्तर—मनुष्यकी अपराजित इन्द्रियां। पराजित इन्द्रियाँ बड़ी मित्र हैं।

८ प्रश्न— कौन निर्धन हैं ?

उत्तर—जिसकी वासनाओंका अन्त नहीं।

९ प्रश्न— धनी कौन है?

उत्तर—सदा सन्तुष्ट रहनेवाला।

१० प्रश्न— अमृत क्या है?

उत्तर—वासना-विहीन अवस्था।

११ प्रश्न— बन्धन क्या है?

उत्तर—अहंभाव।

१२ प्रश्न— मदिरोपम नशा किस वस्तुसे उत्पन्न होता है?

उत्तर—नारीसे।

१३ प्रश्न— अन्धा कौन है?

उत्तर—विषय-लोलुप व्यक्ति।

१४ प्रश्न— हलाहल विष क्या है?

उत्तर—कामुकता।

१५ प्रश्न— कौन सदा दुःखी रहता है?

उत्तर—सांसारिक पदार्थोंके प्रति आसक्ति रखनेवाला।

१६ प्रश्न— मनुष्यके लिये अज्ञेय कौनसी वस्तु है?

उत्तर—नारीका हृदय और उसके कार्य।

१७ प्रश्न— पशु कौन है?

उत्तर—अज्ञानी व्यक्ति।

१८ प्रश्न— किसके साथ समागम नहीं करना चाहिये?

उत्तर—मूर्खोंके, दुष्टोंके, पापियोंके साथ और सङ्कीर्ण हृदयवालोंके साथ।

१९ प्रश्न—पतनका मूल कहां है?

उत्तर—भिक्षावृत्तिमें।

२० प्रश्न—महान् बननेका साधन क्या है ?

उत्तर—किसीसे कुछ न मागना।

२१ प्रश्न—किसका जन्म सार्थक है ?

उत्तर—जिसका पुनर्जन्म नहीं होता।

२२ प्रश्न—किसकी मृत्यु मृत्यु कही जा सकती है ?

उत्तर—जिसकी मृत्यु पुन' नहीं होती।

२३ प्रश्न—सबसे प्रबल शत्रु कौन कौनसे हैं ?

उत्तर—काम, क्रोध, लोभ, वासना और असत्यता।

२४ प्रश्न—भोगसे किसका शमन नहीं होता ?

उत्तर—वासनाका।

२५ प्रश्न—दु खोंका कारण क्या है ?

उत्तर—अपना और पराया समझनेका भाव।

२६ प्रश्न—वास्तविक तस्कर कौन हैं ?

उत्तर—दुर्वासनायें।

२७ प्रश्न—नराधम, पशु कौन हैं ?

उत्तर—जो अपने कर्त्तव्य नहीं करते तथा जो आत्मज्ञान विहीन हैं।

२८ प्रश्न—विद्युत् सदृश तीव्रगामी कौन है ?

उत्तर—धन, यौवन और जीवन।

२९ प्रश्न—किसका सदा चिन्तन करना चाहिये ?

उत्तर—जगत्के मिथ्याका एव ब्रह्मकी सत्यताका।

३० प्रश्न—वास्तविक कर्म क्या है ?

उत्तर—जिससे भगवान् कृष्णको प्रसन्न किया जा सके।

वैराग्य—बुद्ध भगवान् के विचार

भगवान् बुद्धने लोगोंके कष्टोंका इस प्रकार वर्णन किया है —

"ऐ भिक्षुओ! सृष्टि अनादि है। यह मालूम कर सकना कि कब इसकी उत्पत्ति हुई एकदम कठिन कार्य है। जीव सृष्टिके आरम्भमें उत्पन्न होकर, अज्ञानसे भटककर, इधर उधर मारा मारा फिरता है। भिक्षुओ! बतलाओ तो चारों समुद्रमे अधिक जल हैं अथवा तुम्हारे लिये जन्मजन्मान्तर में इधर उधर भटकते समय बहाये आंसुओंमें ?

१—क्योंकि जिससे तुमने घृणा की वह तुम्हारे अश का था और जिससे तुमने प्रेम किया वह पराये अश का था। इस आवागमन, जन्ममरणके लम्बे रास्तेमें तुमने माता, पिता, सगे, सम्बन्धियों सबकी मृत्युके दु ख भोगे हैं। धन-सम्पत्तिकी हानि सही है। इस दु ख भोगके पीड़ानुभवमे तुमने रो रो कर, विलापकर इतने आसू बहाये हैं कि वे चारो समुद्रोंके जलसे भी अत्यधिक हैं। जिसके साथ तुमने घृणा की वह तुम्हारा था, जिसके साथ तुमने प्रेम किया वह परायेका था, यह तो जानो।

२—बुद्धिमान् व्यक्तिको विषय-भोगसे उसी प्रकार दूर रहना चाहिये जैसे जलते हुएको भलेके टुकड़े से। यदि कोई ब्रह्मचर्यका पालन न कर सके तो कमसे कम परस्त्रीगमन से तो अवश्य ही बचना चाहिये।"

३—प्रिय अथवा अप्रिय किसी प्रकारके पदार्थों मे अनुरक्त नहीं होना चाहिये। प्रियको न देखने और अप्रियको देखनेसे पीड़ा होती है।

किसी वस्तुको प्रिय न समझना चाहिये क्योंकि प्रिय वस्तुका विनाश दु ख-दायी है। जिसको कुछ प्रिय अथवा अप्रिय नहीं उसको कोई बन्धन नहीं। जिस वस्तुसे प्रेम किया जाता है उससे दु ख और भयकी उत्पत्ति होती

है, निर्भय व्यक्तिके पास शोक, दु खका नाम ही नहीं, फिर भयका क्या कहना। स्नेहसे परे रहनेवाले व्यक्तिके पास शोक फटकने नहीं पाता फिर भयका काम ही क्या।

सुखसे दु ख और भयकी उत्पत्ति होती है।

सुखकी भावनाके प्रति आसक्ति न रखनेवाले व्यक्तिको दु ख होता ही नहीं, फिर भय कहासे होगा।

वासना ही दु:ख और भयका कारण है। वासना-विहीन व्यक्तिको कोई दु ख नहीं होता फिर भय क्यों होगा ? जब सदा तपन और वेदना ही रहती है तब फिर प्रसन्नता और आनन्द कहा ? क्या अन्धेरेमें रहनेपर प्रकाश की आवश्यकता नहीं पड़ती ? फिर क्यों नहीं उसको खोजते हो ? भिन्न भिन्न प्रकारके, दु ख दर्दसे भरे हुए, वासनाओंसे ओतप्रोत, नश्वर, अस्थिर शरीरकी ओर देखो, यह शरीर निर्बल है, रोगोंका घर है और विनाशी है।

यह शरीर प्रतिदिन कुछ न कुछ नष्ट ही होता है क्योंकि जीवनका अन्त मृत्युमें ही होता है। जैसे शरदमें होनेवाला कद्दू शीघ्र समाप्त हो जाता है ठीक वैसे ही ये हड्डिया नष्ट होती हैं। भला फिर भी लोग कौनसे सुख इसमें ढूढ़ते हैं।

जैसे एकाएक वाढ़ आ जानेसे रातमें सोते हुए तटवर्ती गांवको वहा ले जाती है। ठीक उसी प्रकार मूढ़ मानव बेखबर रहता है, अपने लिये कुछ भी नहीं करता और इतनेमें मृत्यु आकर उसको उठा ले जाती है। मूढ मानव संसारमें ही फँसा रहता है, अतृप्त ही रहता है—जब यमदूत उसको आकर पकड़ ले जाते हैं।

वैराग्य-विवेक चूडामणि से सङ्कलित

१—बहुत कठिनाई से मानव शरीर—नरयोनिकी प्राप्ति होती है और उसपर भी पुरुषयोनि की। इसके बाद भी वेद शास्त्रका जिसको ज्ञान हो उसका क्या कहना। किन्तु इतनेपर भी यदि कोई मोक्षके लिये प्रयत्नशील नहीं होता तो यही कहा जायगा कि उसने आत्म-हनन किया है, क्योंकि वह असत्, मिथ्या, नाशवान् वस्तुओंमें लिप्त रहकर अपनेको नष्ट कर देता है।

२—उससे बढ़कर मूर्ख कौन होगा जो नरयोनि पाकर भी, अपने परम लक्ष्यकी सिद्धिकी ओर अग्रसर नहीं होता।

३—शरीरसे लेकर ब्रह्म पर्य्यन्त-प्रत्येक प्रकारके भोगकी वासनाकी बुराई और उसके दोषोंको अनुभव एव देख, सुनकर उनके परित्यागको ही वैराग्य कहते हैं।

४—वे मूर्ख जो वासनारूपी शृङ्खलासे बँधकर विषयके पदार्थों की ओर खिंचकर जाते हैं, अपने कर्मरूपी दूतों द्वारा स्वर्ग, नरक अथवा मृत्युलोकमें ठेल दिये जाते हैं और वे इन्हींमें भटकते रहते हैं।

५—वासनाके कारण किसी न किसी इन्द्रियसे बँधकर मृग, हाथी, पतङ्ग, मछली और मधुमक्खी अपना प्राण गँवा देती हैं। तो फिर भला मनुष्यका क्या होगा जो पाचो इन्द्रियोंसे एक साथ बँधा है।

६—जहा तक विषका सवाल है, यह कहा जा सकता है कि विषधर सर्पसे भी अधिक विष और विकार इन्द्रिय-गम्य पदार्थोंमें है। विष तो पीनेपर मारता है, किन्तु वैषयिक पदार्थ तो एक बार देख लेनेपर ही मार डालते हैं।

७—विषय-लालसासे मुक्त होना बहुत कठिन है। किन्तु यदि कोई उससे मुक्त हो गया है तो वह सर्वत्र मुक्त है। उसे और कुछ करना धरना

नहीं रहता। उसे षट्शास्त्रोंका ज्ञान एव क्रिया-विधि ज्ञान हो या न हो इससे कोई मतलव नहीं।

८—वे साधक और मोक्षार्थी जिनके अन्दर केवल क्षणिक वैराग्य हो और जो उसीके भरोसे ससार सागरको पार कर जानेकी अभिलापा रखते हों कभी भी सफल नहीं हो सकते। ऐसे लोग वहुत जल्दी वासनाके शिकार वनकर भवसागरके वीचमें, अथाह जलमें डूव जाते हैं।

९—किन्तु जो दृढ वैराग्य द्वारा वासनाको मार डालता है, वह इस ससार सागरको विना किसी विघ्न-वाधाके पार कर जाता है।

१०—जो मूढ विपय-पथकी ओर अग्रसर होता है, उसपर यमका आक्रमण वहुत जल्दी होता है। इसके विपरीत जो किसी गुरुकी सीखके अनुसार ठीक रास्तेपर चलता है, जो अपनी आध्यात्मिक उन्नति चाहता है और विवेक बुद्धि द्वारा सन्मार्गको अपनाता है, वह अपने लक्ष्यको प्राप्त करता है।

११—यदि किसीके अन्दर वास्तवमें मुक्तिकी कामना हो तो विपयानन्दको विप समझकर कोसों दूरसे प्रणाम करना चाहिये और सत्यता, सहिष्णुता, सन्तोप, दया, क्षमा, निष्ठा, शान्ति, आत्म-सयम आदिको पल्लवित और विकसित करना चाहिये।

१२—जो विपयान्ध होकर अपने शरीरकी ही सेवामें लगा रहता है और यह समझते हुए भी कि यह तो मछलियोंका, शृगालोंका, गिद्धोंका भाग है, उन्हींके लिये हैं, इसके लिये नाना प्रकारके प्रयत्न करके पापार्जन करता है तथा अज्ञानसे दूर होकर मुक्ति प्राप्त करनेके लिये चेष्टा नहीं करता, वह निश्चय ही अपनी हत्या आप करता है।

१३—जो लोग शरीरकी सेवा करके आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं, वे

ठीक इसी प्रकारके मूर्ख हैं, जैसे कि कोई घड़ियालकी पीठपर बैठकर नदीके उसपार जाना चाहता है।

१४—मोक्षकी अभिलाषा रखनेवालेके लिये शरीरके प्रति आसक्ति मृत्युके समान है।

१५—पदार्थों के प्रति मोह नहीं होना चाहिये। शरीर, स्त्री, पुत्र आदिसे बिल्कुल विरक्त रहना चाहिये। इनके प्रति तनिक भी आसक्ति न रखे। इस आसक्ति के भावको जीत लेनेके बाद ही ऋषिगण विष्णु पद को प्राप्त करते हैं।

१६—यह शरीर व्यर्थ है। यह हड्डी, मांस, चमड़ा, रुधिर, मल मूत्र से बना हुआ है। यह कूड़ेका ढेर है। इसके लिये परेशान न होना चाहिये।

१७—इस शरीर के कारण कितनी असुविधायें, कितने विभाजन लगे रहते हैं—जैसे, जात-पात, रहन सहन। यह बीमारियोंका घर है। कभी-कभी इसके कारण आराधना और पूजा की जाती है और कभी-कभी इसके ही कारण अनादर और अपमान भी सहना पड़ता है।

हेमचूड की कथा

प्राचीन कालमें मुक्तचूड़ नामका एक राजा था। दशार्ण देश पर उसका राज्य था। हेमचूड़ तथा मणिचूड़ नामक दो लड़के थे। वे दोनों सुन्दर एवं साधु स्वभावके थे। सच्चरित्रता उनके भीतर कूट-कूटकर भरी हुई थी। आचार व्यवहारमें वे सौम्य थे एवं सर्वशास्त्रपारंगत विद्वान थे। एक दिन वे सह्य पर्वत पर शिकार खेलनेके लिये गये। उनके साथ नौकर-चाकर शिकारी वगैरह बहुतसे लोग थे। वहां उन्होंने कितने ही वन्य पशुओंका वध

किया। एकाएक वहा भीषण आंधी उठी, चारों ओर घना अन्धकार फैल गया। एक दूसरेका मुह देख सकना वहा असम्भव हो गया।

किसी प्रकार हेमचूड़ भटकता फिरता एक साधुकी कुटीमें पहुँचा। उस आश्रममें एक सुन्दर युवतीको देखकर हेमचूड़को महान् आश्चर्य हुआ। उन्होंने उस निर्भय युवतीको अकेले उस जङ्गलमें देखकर पूछा—"तुम कौन हो? तुम्हारे पिताका क्या नाम है? तुम यहा अकेली क्यों हो? तुममें यहा अकेले रहनेका साहस कैसे उत्पन्न हुआ?" उस वालाने मधुरिमामिश्रित स्वरमें राजकुमारका स्वागत करते हुए कहा—"राजकुमार! आप थके हुए आ रहे हैं, आपको विश्रामकी आवश्यकता है, आप पहले स्वस्थ हो लें, कुछ जलपान कर लें तो मैं अपना पूरा किस्सा सुनाऊगी। राजकुमारने उसके आदेशानुसार फल आदि ग्रहण किये और थोड़ी देर तक विश्राम भी किया।

इसके वाद उस युवतीने अपनी कथाका विवरण देना आरम्भ किया। उसने कहा, "कुमार! मेरी कथा ध्यानसे सुनो। जिनकी पूजा सारा ससार करता है, जो अपनी तपस्याके लिये जगत् प्रसिद्ध हैं, जिन्होंने कैवल्यानन्द प्राप्त कर लिया है। मैं उन्हीं महर्षि व्याघ्रपदकी धर्मपुत्री हूँ। मेरा नाम हेमलेखा है।

एक दिन विद्युत्प्रभा नामकी अप्सरा वेग नदीमें स्नान करनेके लिये आयी। वहापर वङ्गोंके नृप महाराज सुषेण भी आ पहुचे। विद्युत्प्रभाकी अवर्णनीय, अनुपम, सुन्दरताको देखकर सुषेण मोहित हो गये। वह अप्सरा भी राजाके सौन्दर्य पर रीझ गयी। सुषेणने अपना प्रेम प्रदर्शित किया। विद्युत्प्रभाने भी स्वीकृति दे दी। कुछ काल तक विद्युत्प्रभाके साथ रहनेके बाद राजा सुषेण अपनी राजधानीको लौट गये।

कुछ दिनोंके बाद विद्युत्प्रभाने एक सन्तानको जन्म दिया। अपने पतिके भयसे उसने उस सन्तानको वहीं छोड़ दिया। मैं ही वह सन्तान हूँ। महर्षि व्याघ्रपद नदीमें मार्जन करनेके लिये जा रहे थे। रास्तेमें उन्होंने मुझे देखा। उनके मनमें दया उत्पन्न हुई। उन्होंने दया करके मुझे उठा लिया। माताकी भाँति उन्होंने मेरा पालन पोषण किया। मैं उनको पिताकी तरह समझती हूँ। उसी तरह उनकी सेवा करती हूँ और उनकी ही कृपासे मैं निडर हूँ। मेरे पिता अब आना ही चाहते हैं। थोड़ी देर ठहरिये। वह अभी आ जाते हैं। उनको प्रणाम कीजिये और उनका आशीर्वाद ग्रहण कीजिये।

हेमलेखा चतुर लड़की थी। उसने राजकुमारके हृदयकी बात समझ ली। उसने कहा, "राजकुमार! निराश न हो। मेरे पिताको आने दो। वह तुम्हारी इच्छाको पूरी कर देंगे।

शीघ्र ही पूजाकी तैयारी किये हुए महर्षि व्याघ्रपदने प्रवेश किया।

राजकुमारने उठकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। महर्षिको यह मालूम हो गया कि राजकुमारका अनुराग हेमलेखासे हो गया है। उन्होंने हेमलेखाका विवाह राजकुमारसे कर दिया। राजकुमार उसको लेकर अपनी राजधानीमें गया। राजाने इस जोड़ीको देखकर प्रसन्नता प्रकट की और बहुत धूमधामसे दोनोंका विवाह कर दिया।

राजकुमार हेमलेखासे अत्यधिक प्यार करता था। वह उसके प्रति बहुत आसक्त था। किन्तु राजकुमारने देखा कि हेमलेखा कि रुचि विषयभोगकी ओर बिल्कुल ही नहीं है। उन्होंने हेमलेखासे एक दिन कहा, "प्रिये हेमलेखा! तुम्हारी क्या हालत है? मैं तो कुछ समझ ही नहीं पाता हूँ। मैं तुमसे इतना प्रेम करता हूँ किन्तु तुम्हारी मेरे प्रति तनिक भी सद्भावना नहीं

है। मेरे प्रेमका तुम्हारे ऊपर कोई प्रभाव नहीं दीखता। जब तुम्हारे मनकी भावना ऐसी ही रहेगी तो भला मैं आनन्दका उपभोग कैसे करूंगा? तुम तो सदा मूर्तिकी भाति आँखें बन्द किये बैठी रहती हो। न तो तुम हँसती हो, न बोलती हो। बतलाओ क्या बात है।"

हेमलेखाने कहा, "राजकुमार! बताओ प्रेम क्या वस्तु है? रुचि अरुचि किसको कहते हैं? क्योंकि मैं इनको नहीं समझ पाती अत: मैं सदा इन पर विचार किया करती हूँ। और अभी तक मैं इनको समझ नहीं सकी। कृपया मुझे ये बातें समझाइये।

हेमचूड़ने कहा, "निश्चय ही स्त्रियोंका मन निर्विकारी होता है। किन्तु पशु भी अपनी रुचि और अरुचिको समझते हैं। हम नित्य ही देखते हैं कि वे अच्छी चीजको पसन्द करते हैं और बुरी चीजको नापसन्द। सौन्दर्य प्रसन्नताका, आनन्दका कारण है, किन्तु कुरूपतासे घृणा होती है। तुम इसी विचारमें मग्न रहकर क्यों व्यर्थ समय नष्ट करती हो।"

हेमलेखाने कहा, निश्चय ही स्त्रियोंके अन्दर स्वतन्त्र विचित्र शक्तिका अभाव होता है। अत क्या यह मेरे लिये आवश्यक नहीं है कि अपने सन्देहोंको दूर करा लूं?

यदि तुम इन बातोंको स्पष्ट कर सको तो मैं इन पर विचार करना बन्द कर दूंगी और तुममें ही अनुरक्त हो जाऊंगी। तुमने अभी कहा कि पदार्थोंसे सुख और दु:ख दोनोंकी उत्पत्ति होती है। और यह देश, काल और परिस्थितिके ऊपर निर्भर करता है। मुझे बताओ ऐसा क्यों होता है? कृपया मुझे ठीक और निश्चित उत्तर दीजिये। जाड़ेमें अग्निसे आराम मिलता है किन्तु गरमीमें उसीसे दु:ख मिलता है। ठण्डे देशोंमें आगसे आराम

पहुँचता है मगर गरम देशोंमें आगके पास जाया भी नहीं जाता। आगकी कमी वेशी की वजहसे भी इसके परिणाममें अन्तर पड़ा करता है। यही हालत स्त्री, पुत्र धन और सम्पत्तिका है।

इससे दुःख और कष्टकी ही प्राप्ति होती है। तुम्हारे पिताके पास तो अपार धन है स्त्री है, सन्तान है फिर भी वे दुःखी क्यों हैं? बहुतोंके पास यह सब कुछ भी नहीं है तब भी वह प्रसन्न रहते हैं। सांसारिक आनन्दमें दुःख, पीड़ा, भय और चिन्ताका सम्मिश्रण रहता है। अतः इसको सुख तो कह नहीं सकते। दुःख बाह्य और आन्तरिक दोनों होता है। बाह्य दुःखके कारण जगतके तत्व हैं। आन्तरिक सुखकी उत्पत्ति वासनाके कारण होती है। इससे मनका सम्बन्ध रहता है। इनमेंसे आन्तरिक दुःख अधिक बुरा होता है। यही सारे दुःखोंकी जड़ है। सारा विश्व आन्तरिक दुःखसे परेशान है। दुःख रूपी वृक्षकी वासना रूपी जड़ें इतनी प्रबल हैं कि इस तरह का कभी विनाश नहीं हो पाता। यहा तक कि इन्द्र और अन्य देवता भी इससे नहीं बच सके हैं। वे भी दिनरात वासनाके शिकार होते रहते हैं। यदि वासनाका विनाश हो जाये तो सुखकी खोज स्वयं बन्द हो जाये। दुःख मिले हुए सुख का उपभोग तो कीट पतङ्ग भी करते हैं, क्या मनुष्य इनसे अधिक सुख भोगता है? बल्कि कीट पतङ्गोंके सुख मनुष्यके सुखसे अच्छे हैं। इसका कारण यह है कि वे वासनाके गुलाम तो नहीं हैं। और इसीलिये उनको चिन्ता, उद्विग्नता तो नहीं है। मनुष्यको हजारों इच्छाओंमें कहीं एकाधकी पूर्ति होती है। इसको सुखतो नहीं कह सकते। स्त्रीका आलिंगन करना मनुष्यको सुखकर प्रतीत होता है किन्तु यदि अपने क्रोड़में उसको अधिक कसकर दबाया जाये तो उसको कष्ट होता है। विषय भोगके अनन्तर स्त्री-

पुरुष थकावटका अनुभव करने लगते हैं, हार से जाते हैं। भला वतलाओ कहा इन सासारिक पदार्थोंमें सुख है? ऐसे सुखका उपभोग तो पशु भी कर लेते हैं। यदि तुम यह कहो कि तुमको मेरे शरीरकी ओर देखनेसे प्रसन्नता होती है तो तुमको यह समझना चाहिये कि यह सुख उसी तरह काल्पनिक और भ्रामक है जिस प्रकार किसीको स्वप्नमें आलिंगन सुख प्राप्त होता है।

"देखो सुनो एक कथा कहती हूँ। एक वहुत ही सुन्दर राजकुमार था। उसकी स्त्री वहुत सुन्दरी थी। वह पुरुष उस स्त्री पर जान देता, उसको वहुत चाहता था। किन्तु उसकी स्त्री नौकरसे फँसी थी। और राजकुमारको धोखा देकर भुलाये रखती थी। रातको शरावमें कुछ तीक्ष्ण नशेवाली चीज देकर नौकर राजकुमारको वेहोश कर दिया करता था और इसके वाद कोई कुरूपा स्त्री कुमारके पास भेज कर रानीके साथ वह खूव विषयानन्द उठाया करता था, नशेमें वेखवर कुमार सोचता था कि मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ जो ससारकी सवसे सुन्दर स्त्रीका सहवास और सम्भोग मुझे प्राप्त है। एक दिन सयोगवश नौकर भी वेहोशीकी दवा मिलाना भूल गया और राजाने भी उस दिन शराव अधिक न पी। रातको सम्भोगके समय राजाने देखा कि वहा उसकी स्त्री नहीं है वल्कि दासी पड़ी हुई है। राजाको वहुत क्रोध आया। उसने गुस्सेमें आकर पूछा कि रानी कहा है। पहले तो वह चुप रही पर जव राजाने तलवार खींच ली तो डरकर उसने सभी वातें वतला दीं और जहा रानी थी वह स्थान दिखा दिया। राजाने सोचा, "मैं कितना वड़ा मूर्ख हूँ। शराव पीकर तो मैं पतनके सीमा पर जा पहुचा। स्त्रियोंका अधिक विश्वास करनेवाले सदा ऐसी ही गतिको प्राप्त होते हैं।

चिड़ियोंको एक ही वृक्ष पर घोंसला बनाकर सदा रहना अच्छा नहीं लगता। वे सदा आज इस पर तो कल उस पर बनाया करती है। ठीक वही हालत स्त्रियोंकी है। आज अमुक पुरुषसे फँसी है तो कल अमुकसे। ओह! मैं तो पशुसे भी बुरा हो गया। मैंने अपनी पत्नीको अपने प्राणोंसे भी बढ़कर समझा और उसका यह परिणाम! निस्सन्देह जो सदा स्त्रियोंमें अनुरक्त रहता है, जो सदा उनके ही कहेमें रहता है वह गदहेसे भी अधिक मूर्ख है। स्त्री शारदीय नभकी भाति है। मैं आजतक इससे अनभिज्ञ था। मैं सदा उसकी खुशामद में रहता हूँ, उसका विश्वासपात्र हूँ, उसपर मरता रहता हूँ फिर भी उसने मुझे छोड़ दिया और उस गन्दे नीच नौकरको पसन्द किया और इतने पर भी मुझसे प्रेमका ढोंग करती रही। मैं तो काफी सुन्दर हूँ, वह नौकर तो कुरूप, गन्दा और घृणा योग्य है और इस पर भी उसने मुझे धोखा दिया।" राजाको इस ससारसे ही घृणा हो गयी और उन्होंने सब कुछ छोड़ कर जङ्गलका रास्ता लिया।

अत हे राजकुमार! सौंदर्य तो केवल एक काल्पनिक वस्तु है। यह एक मानसिक भावमात्र है। तुमको मुझमें सौन्दर्यकी पराकाष्ठा दीख पड़ती है किन्तु कितने लोग हैं जिनको भद्दी और कुरूपा स्त्रियोंमें ही सौन्दर्य दिखायी पड़ता है। किसी स्त्रीको देखनेके बाद मनमें उसकी एक रूप रेखा लोग बना लेते हैं और यदि उसी रूपका निरन्तर ध्यान किया जाये तो वासना प्रदीप्त हो उठती है। ऐसी वासनाका शिकार व्यक्ति विषय भोगमें रत रहता है किन्तु जिसके अन्दर काम वासना बिल्कुल नहीं होती वह सुन्दरसे सुन्दर स्त्रीको देखकर भी नहीं देखता। वासनाकी इस प्रबलताका कारण सुन्दरताकी कल्पना और स्त्रियोंका चिन्तन ही है। तपस्वी और छोटे-छोटे बालक इसका बिल्कुल

ही ख्याल नहीं करने अत उनके भीतर काम भावना नहीं उठती। जिनके भीतर किसी विशेष स्त्रीके प्रति आसक्ति रहती है वे उसकी एक कल्पनात्मक मूर्ति अपने मनमें बैठा लेते हैं और उससे प्रेम करने लगते हैं चाहे उनकी प्रेमिकामें वह सौन्दर्य हो या नहीं। वे स्त्रीमें केवल काल्पनिक सौन्दर्यकी सृष्टि कर लेते हैं। यदि तुम कहो कि कुरूपा स्त्रियोंमें सौन्दर्य कहासे आ सकता है या सौन्दर्यके विना सुख कैसे प्राप्त हो सकता है तो मेरा उत्तर यह है कि कामुक व्यक्ति मोहान्ध होता है। काम तो अन्धा होता ही है। कामुकको तो रम्भाका सौन्दर्य भी कुरूपामें दिखायी पड़ता है। मैं पुन कहती हूँ कि सौन्दर्य केवल मनका एक विकार है। यदि वास्तवमें खटाई, मिठाईको तरह सौन्दर्य भी कोई नित्य वस्तु होती तो छोटे-छोटे बालकों और बालिकाओंमें भी सौन्दर्य होना चाहिये। पर ऐसा तो होता नहीं। अत सौन्दर्य केवल मात्र काल्पनिक वस्तु है।

लोग सोचते हैं कि इस हड्डी, मांस, रुधिर, मल, मूत्र, द्वारा निर्मित शरीर में सौन्दर्य है। किन्तु बुद्धि रखनेवाला मनुष्य जब ऐसा सोचता है तो कृमिकीटसे वह किस अशमें अच्छा हुआ। हे राजन्! तुमको मेरे इस शरीरमें सौन्दर्य दिखायी पड़ता है। किन्तु थोड़ा सा इसपर विचार तो करो। इसके प्रत्येक अंगका विश्लेषण तो करो। प्रत्येक मधुर और सुकुमार वस्तुके अवयवोंका विश्लेपण करो, उनपर विचार करो। हम लोग जो कुछ अमूल्य पदार्थ खाते हैं वह मलमें परिणत हो जाता है। तब भला बताओ संसारमें कौन वस्तु प्रिय और आनन्दप्रद रही।"

हेमचूड़ने हेमलेखाके अमृतोपम उपदेश सुने। उन्होंने उसकी वातोंपर विचार किया। ससारसे उनको विरक्ति हो गयी, उन्होंने आत्म चिन्तन किया

और अन्ततोगत्वा जीवन-मुक्त हो गये। मणिचूड़ने भी अपने ज्येष्ठ भ्राताले ज्ञान सीखा, अपने पिताको भी पुत्रने सीखाया। सासने बहूसे ज्ञान सीखा। उस राज्यके मन्त्रीगण भी चतुर और बुद्धिमान हो गये। वहाके नागरिक, पशु, पक्षी सभी ज्ञानकी बातें करते थे। वामदेव आदि ऋषियोंने जब देखा कि उस नगर भरमें ज्ञान विद्याकी प्रतीति इतनी अधिक हो गयी है कि पशु पक्षी तक उससे प्रकाश ग्रहण कर लाभ उठा रहे हैं तो इन्होंने उस नगरका नाम विद्या-नगर रख दिया।
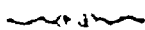
ब्रह्मज्ञान

राजमिस्त्री ईंट, पत्थर, चूने और सीमेन्टसे घर बनाता है। दीवालके किनारे-किनारे वह बड़े बड़े ईंटके टुकड़े रखता है और छोटे टुकड़ोंको बीचमें तथा यत्र तत्र लगाता है। इसके बाद पलस्तर करता है और सबसे अन्तमें सीमेन्ट लगाता है। इसके बाद दीवालको सफाई करके इसको सुन्दर रंगसे रंगता है जिससे वह चित्ताकर्षक हो। उसी प्रकार ईश्वरने भी प्रकृतिकी सहायतासे इस सुन्दर मानव शरीरका निर्माण किया है। इस शरीर रूपी घरमें हड्डिया, पत्थरोंके समान हैं, मास पेशिया ईंटके टुकड़ोंके सदृश हैं और चर्बी ईंटके समान। अन्दर भितचर्म चूना है, ऊपरका साधारण चर्म सीमेन्ट है और चमड़ेकी आकर्षण शक्ति और उसका सौन्दर्य रंग है। इस कुशल कारीगरकी बुद्धिका क्या कहना। मासपेशिया हड्डियोंसे अस्थिबन्धन के द्वारा जुड़ी हुई रहती हैं। ये जोड़ अस्थि बन्धनके कारण सुदृढ बने हैं। चर्बीसे अङ्ग प्रत्यङ्गमें सौन्दर्य और सुगठन आ जाता है। शरीरके ऊपरी चर्मका रोग न देखनेवालोंकी आखोंको बरबस आकृष्ट कर लेता है। लोग इस विनाशी

शरीरकी मिथ्या सुन्दरताके कारण ठगे जाते हैं। लोग इस शरीरसे चिपटे रहते हैं और इस चिपटनेके कारण ही पुन. पुन. जीवन मरणके चक्करमें फसते हैं।

यह शरीर एक प्रकारका चलता फिरता रहस्यमय भवन है। इस भवनमें ब्रह्मका वास है। ब्रह्म ही आत्मा हैं। बुद्धि और ज्ञान उनका प्रधान मन्त्री है। प्रधान सेनापति मन है। दसों इन्द्रिया सैनिक और चाकर हैं। आखें इस भवनकी खिड़किया हैं। मुंह बाहर निकलनेके लिये तथा आखें और कान भीतर प्रवेश करनेके लिये द्वार हैं। इन्द्रियोंके स्वामी देवता लोग द्वार रक्षक हैं।

नस नाड़िया तार हैं, मस्तिष्क समाचार ग्रहण करनेकी शक्ति है जो उसको सर्वत्र भेजता है। इसमें एक विचित्र सा विद्युत्केन्द्र भी है। प्राणविद्युत् है। हड्डिया पर्वत हैं, नसें नदिया हैं, मूत्राशय सागर है। आतें और पेशाब की नली नालियां हैं, हृदय जल, यन्त्रालय है, धमनिया जल वाहिनी नालिकाये हैं, सूक्ष्म हृदय वृन्दावन है और सुषुम्ना इस वृन्दावनकी कुञ्जगली है। जीवराधा है जो भगवान कृष्णरूपी ब्रह्मसे योगाभ्यास द्वारा समाधिस्थ होकर मिलना चाहता है। सहस्रारमें राधा और कृष्ण अथवा जीव और ब्रह्मका मेल होता है। भिन्न-भिन्न चक्र रास्तेके कदम्बवृक्षके समान ठहराव हैं।

यह शरीर पाच तत्वोंसे निर्मित है। हड्डिया मिट्टी हैं, रुधिर अनिल है, चमड़ेकी चमक और आखें अग्नि हैं, प्राण अनल है। यह वायु शून्यमें, आकाशमें व्याप्त रहती है। आकाशके सहारे चारों तत्व ठहरे हुए है। अनल, अनिल, पृथ्वी और वायुकी उत्पत्तिनभसे हुई है। शरीरके भस्म होनेपर हड्डियां पृथ्वीमें मिल जाती हैं। वह अपने स्रोतमें मिल जाती हैं।

लय चिन्तन द्वारा यदि मिट्टीको जलमें, जलको अग्निमें, अग्निको वायुमें और वायुको आकाशमें परिवर्तित कर दिया जाये तो यह शरीर स्वयमेव विनष्ट हो जाता है। यह आकाशमें, शून्यमें मिल जाता है। मायाके कारण ही यह शरीर दिखायी पड़ता है। वास्तवमें शरीर तो रहता नहीं केवल मात्र उसका आधार अविनाशी आत्मा सदा रहता है।

यह शरीर जड़ और अचेतन है। प्राणके निकलते ही यह लकड़ीके कुन्देकी भांति निष्क्रिय हो जाता है। जिस प्रकार लोहा अग्निके संसर्गसे अग्नि जान पड़ता है उसी प्रकार यह शरीर भी प्राण, मन और आत्माके प्रकाशसे चैतन्यवत् प्रतीत होता है। आत्माके चैतन्यसे पहले शरीरका जड़ चैतन्य आभासित होता है क्योंकि यह उसके संसर्गमें रहता है, और फिर उसीसे यह जड़ शरीर भी आभासित हो उठता है। इसीसे यह शरीर हिल—डुल चल फिर सकता है। किन्तु फिर भी विनाशी हड्डियां और मांस मिट्टी ही तो हैं। अतः इनसे बिल्कुल नहीं चिपटना चाहिये। इस शरीरके प्रति तनिक भी आसक्ति और मोह नहीं होना चाहिये। अज्ञान दूरकर अविनाशी आत्माको प्राप्त करनेका उद्योग करना चाहिये।

इस रहस्यमय भवनके अन्तरतम भागमें भगवान् छिपे हैं। वह लुक छिपकर रहते हैं जैसे आंख मिचौनीका खेल खेलते हो। उनका पता लगाना परमावश्यक है। इन्द्रियों और मनकी गति बाह्य पदार्थोंसे हटाकर चित्तको एकाग्रकर उनका पता लगाना चाहिये।

आसन, प्राणायाम, बन्ध, मुद्रा एव यौगिक क्रियायों द्वारा आधिभौतिक, आधिदैविक और अध्यात्मिक उन्नतिकी ओर ले जानेवाली अनुपम और प्रमाणिक पुस्तक। इस एक ही पुस्तकसे जो लाभ उठाया जा सकता है वह अन्य कई पुस्तकें पढकर भी नहीं उठाया जा सकता। इसके लेखक स्वय एक महान् योगी हैं। इस विषयकी ऐसी उपयोगी पुस्तक हिन्दीमें दूसरी नहीं हैं। मूल्य केवल १।)

देशके वड़े-वड़े विद्वानों तथा अनेक पत्र पत्रिकाओंने पुस्तककी भूरि-भूरि प्रशसा की है। अनेकोंमें से कुछ सम्मतियां—

आज—काशी—प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्रीस्वामीजी एक महान् योगी हैं। आपकी पुस्तकोंका सात्विक जीवन ग्रंथमाला नाम देकर कलकत्तेके जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लि० ने प्रकाशन किया है। उसीका यह चतुर्थ पुष्प है। अभ्यासीकी कठिनाई का पूरा ध्यान रखकर श्रीस्वामीजीने हठयोग जैसे विषयको इस उत्तम और सरल ढङ्ग से समझाया है कि देखकर आश्चर्य होता है। गुरुकी सहायताके विना भी इस पुस्तक की सहायतासे अभ्यास करना सुगम है। हमारी रायमें पुस्तक सबके पास होनी चाहिये। उपयोगिताको देखते हुए सजिल्द पुस्तकका दाम कोई अधिक नहीं है।

नव भारत—नागपुर—प्रस्तुत पुस्तकके लेखक श्रीस्वामीजी विश्वविश्रुत हैं हठयोग जैसे कठिन विषयका वर्णन इस उत्तम ढङ्गसे किया गया है कि साधक विना गुरुकी सहायताके इसमें वर्णित आसनादिका अभ्यास कर सकता है। भाषा बोध गम्य और स्पष्ट है। पुस्तक काफी अच्छी वन पड़ी है। अवाल वृद्ध सभी इससे एकसाथ लाभ उठा सकते हैं। प्रकाशकको हम धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकते जिसने केवल १।) में ऐसी सजिल्द और सचित्र पुस्तक प्रकाशित कर जनताका कल्याण किया है। हम ऐसी पुस्तकका घर-घर प्रचार चाहते हैं।

लोकमान्य—कलकत्ता—यह पुस्तक यौगिक क्रियाओंके साधकोंके लिये नहीं, वरन् सर्वसाधारणके लाभार्थ लिखी गयी है। यह साधकोंके लिये सहायक और सर्वसाधारणके लिये स्वास्थ्यदायक सिद्ध होगी। इसमें आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध आदि प्रकरण हैं। पुस्तक सग्रहणीय है।

प्रकाशक—**जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड,**

कलकत्ता।　　　　बनारस।

भारत की

सर्वश्रेष्ठ डायरियां